संस्थापक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

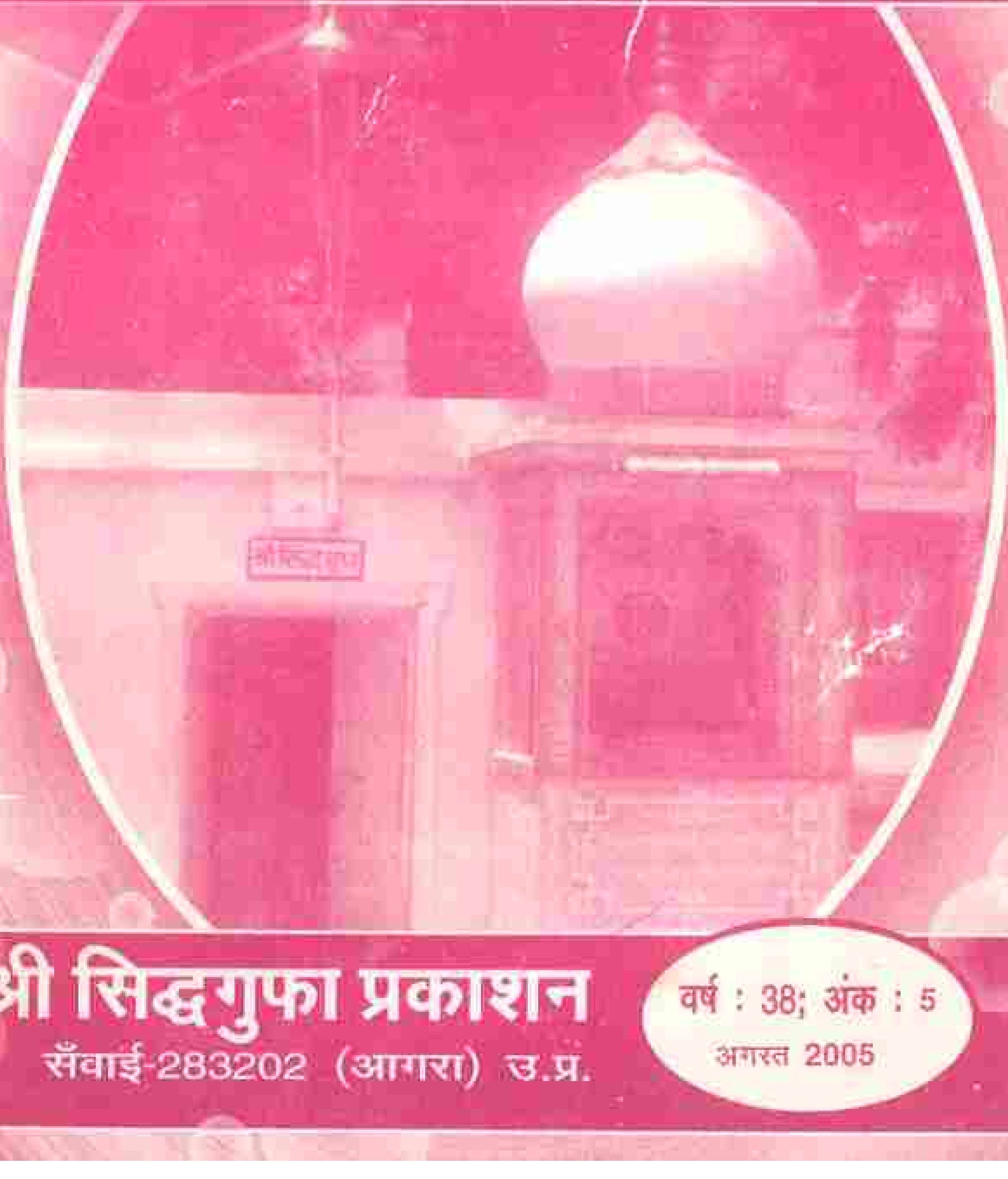

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 38; अंक : 5
अगस्त 2005

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- जीव सत्ता से ब्रह्मत्व की ओर (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 9
- मेरे सद्गुरुदेव —विजय सिंह 12
- मा फलेषु कदाचन् — कृष्ण कुमार पाण्डेय (गोरखपुर) 15
- गुरुदेव तुम्हारे चरणों में —जगदीश राय बंसल 'अधम' 18
- श्री प्रभु चरणों में समर्पित — राजेश कुमार सिंह (बलिया) 19
- संस्कार शक्ति व साधना शक्ति — कु० रुक्मिणी वर्मा 20
- तारक ब्रह्म—मेरे सद्गुरुदेव — वेदव्रत द्विवेदी 25
- ऐसे आ जाते हैं, भगवान सदाशिव — मोहनलाल शर्मा 28
- श्री सत्यवीर परिवार पर श्री गुरु कृपा — केशव देव उपाध्याय 31
- श्री गुरु पूर्णिमा : मेरे श्री गुरुदेव— कुँवर ए०के० सिंह एडवोकेट 36
- पूर्ण योग — स्वामी श्री मित्रसेन जी 40
- कर्मयोग —अवनीश भटनागर 38

एक प्रति	:	रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	:	रु. 100-00
द्विवार्षिक	:	रु. 190-00
आजीवन	:	रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 38
अंक 5

अगस्त
2005

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्यानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

स्तुति

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य,
कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखदाता।
संसार हेतुरपि यः पुनरन्तकालस्त्वं,
शकरं शरणदं शरणं व्रजामि।।

अर्थात्

जो इस सम्पूर्ण चराचर जगत् के कर्ता और इसे अपने किए हुए कर्मों के अनुसार सुख–दुःख देने वाले हैं, जो संसार की उत्पत्ति हेतु तथा उसका अन्तराल भी स्वयं ही हैं, सबको शरण देने वाले उन्हीं भगवान शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

अमृतकण

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

(ईशोपनिषद्)

जो मनुष्य विद्या और अविद्या दोनों को जानता है, वह अविद्या के द्वारा मृत्यु को लाँघकर विद्या की सहायता से शाश्वत आनन्द को प्राप्त कर सकता है।

❊ ❊ ❊

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्तासात्विक उच्यते।।

सात्विक कर्ता वह है जो आसक्ति रहित है, अहंकार से शून्य है, धैर्य और उत्साह से पूर्ण है और सिद्धि अथवा असिद्धि में सम है।

❊ ❊ ❊

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।

(भगवद् गीता)

अतः कौन सा कर्म करना चाहिये और कौन–सा नहीं करना चाहिये, इसका निर्णय करने के लिए तुम्हारे पास शास्त्र प्रमाण है। इस विषय में शास्त्र की आज्ञा जानकर तुम्हें उसी के अनुसार कर्म करना चाहिये।

❊ ❊ ❊

नान्योऽनुभाव्यो बुद्ध्यास्ति तस्य नानुभवो परः।
ग्राह्यग्राहकवैधुर्यात् स्वयं सैव प्रकाशते।।

बुद्धि अथवा ज्ञान से कोई अनुभाव्य पदार्थ भिन्न नहीं है, ग्राहक से भिन्न कोई ग्राह्य नहीं है– केवल बुद्धि (ज्ञान) स्वयं प्रकाश कर रही है।

❊ ❊ ❊

विशेष लेख

जीव सत्ता से ब्रह्मत्व की ओर

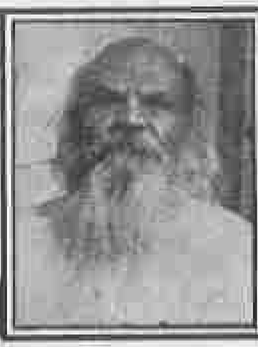

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

धारणा, ध्यान और समाधि जब एक विषयक हो जाते हैं तो उसका नाम संयम हो जाता है। यह संयम योग की उच्चतर भूमिकाओं का कारण हुआ करता है। यह सब हमें क्यों करना पड़ता है ? देखो ! यह हमें इसलिये करना पड़ता है क्योंकि हम इस समय जीव सत्ता में हैं। जीव और ईश्वर में क्या भेद होता है—इस बात को भी थोड़ा समझ लो। भगवान पतंजलि देव ने योग दर्शन में ईश्वर का लक्षण बताया। **''क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरा मृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः''** अर्थात् जो अविद्यादि क्लेशों से सदा ही रहित हैं जिन्हें कर्मफल तथा कर्मवासना कभी छूते भी नहीं ऐसा पुरुष विशेष ईश्वर है। श्री मदभगवद गीता में भी भगवान ने इसी पुरुष विशेष का वर्णन करते हुये कहा है—

द्वाविमौ पुरुषो लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः।।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।

भगवान ने स्वीकार किया है कि संसार में दो प्रकार के पुरुष हैं— **''क्षरः सर्वाणि भूतानि''** पञ्च महाभूत आदि क्षर हैं ये घटते बढ़ते रहते हैं। जैसे हमारे शरीरों में तत्व घटते—बढ़ते रहते हैं। बीमार हो जाने पर हम चिकित्सा से इन्हें सम रखने का प्रयत्न करते हैं इस प्रकार से पञ्च भूतों से निर्मित वस्तुओं में अधिक परिवर्तन दिखाई देता है। अतः ये क्षर हैं। विकार रहित जीवात्मा कूटस्थ रहता है। उसे अक्षर कहते हैं। इसी जीवात्मा के लिये योगशास्त्र में कहा गया है **''चितिशक्तिरपरिणामिनी, अप्रतिसंक्रमा दर्शित विषया शुद्धा चानन्ता च''** चिति शक्ति जीवात्मा अपरिणामिनी है इसमें कोई परिवर्तन या परिणाम नहीं होता। अप्रतिसंक्रमा यह संक्रमण नहीं करता अर्थात् प्रभाव रहित है शुद्ध या अनन्त है। किन्तु दर्शित विषय है इसे विषय दिखा दिये गये हैं। इसलिये यह जीवात्मा बुद्धि के द्वारा विषय दिखा दिये जाने के कारण बुद्धि बोधात्मा बन गया। अर्थात् हमारे अन्दर जो सुख दुःखादि के भाव हैं वे बुद्धि के अन्दर हैं आत्मा में नहीं है किन्तु आत्मा में भासित होते हैं। जीवात्मा के लक्षण शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित है **''इच्छाद्वेषसुख दुःख प्रयत्नाज्ञानान्यात्मनो**

लिंगम्'' अर्थात् इच्छा, द्वेष सुख दुःख प्रयत्न और अज्ञान जीवात्मा में रहा करते हैं जीवात्मा में इच्छायें होती हैं उनकी पूर्ति के लिये वह प्रयत्न करता है। जो वस्तुयें उसे अच्छी नहीं लगती उनके प्रति मन में द्वेष रहता है। राग और द्वेष मन में रहा करते हैं इससे वह सुखी दुःखी होता है। राग होने पर सुख अनुभव करता है और जब द्वेष हो जाये तो दुःखी हो जाता है। कामनाओं की प्राप्ति में सुखानुभव करता है और प्राप्त न होने पर दुःखी हो जाता है।

जीवात्मा के अन्दर एक और बात रहती है वह है अज्ञान। हम लोगों के अन्दर अज्ञान रहा करता है। एक बच्चे को उसके माता–पिता पढ़ाना आरम्भ करते हैं। पढ़ते–पढ़ते बी. ए., एम. ए. आचार्य आदि की उपाधि प्राप्त करके वह विद्वान तो हो जाता है किन्तु उसका वह ज्ञान परिमित ज्ञान है। हमारे पास हमारे बच्चों में कोई कमिश्नर आता है कोई जिलाधिकारी आता है कोई जज प्रोफेसर वकील आदि–आदि ऊँचे अधिकारी आते हैं। किन्तु इतना होने पर भी वे लोग अज्ञान में ही होते हैं अज्ञान की निवृत्ति नहीं हो पाती। वे यह नहीं जान पाते कि अब इस शरीर पर कौन सा कर्म भोग आने वाला है या कि कर्म संस्कार का निपटारा हो चुका है। अर्थात् कर्म रहस्य एवं काल रहस्य को विद्वान होने पर भी जान नहीं पाते। यह अज्ञान के कारण है। इसलिये जब तक एक जीवात्मा की सत्ता रहती है तब तक उसके अन्दर से भ्रान्तियाँ एवं संशय बने ही रहते हैं। इसलिये जीव अज्ञानी कहा जाता है। ईश्वर के अन्दर अज्ञान नहीं होता। इस अज्ञान को ही योग शास्त्र में क्लेश नाम से कहा जाता है। इस विषय को मैंने तुम्हें कई बार समझाया है किन्तु फिर भी ध्यान में रखो ! ये क्लेश पाँच प्रकार के माने जाते हैं अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश– ये पाँच क्लेश जीवात्मा में होते हैं। **अविद्यादयः क्लेशाः** इसमें पहला क्लेश है–अविद्या। अविद्या का लक्षण है **''अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्या तिरविद्या''** अर्थात् अनित्य को नित्य समझ लेना। हमारे शरीर हमेशा रहने वाले नहीं है किन्तु मन के अन्दर यह ख्याल ही नहीं रहता कि हमारा शरीर एक दिन चला जायेगा। अशुचि अपवित्र को पवित्र समझना यह दूसरी अविद्या है हमारे शरीर में मल–मूत्र, कफ आदि भरा रहता है। यह सदा अपवित्र रहने वाला है किन्तु हम इसको पवित्र समझ रहे हैं यदि पवित्रता का भास न हो तो हम किसी से प्यार ही न करें ममता न उपजे। यह मेरा प्यार है, यह मेरा मित्र है आदि–आदि। यह तभी होता है जब हम शरीरों को पवित्र समझते हैं। इसी से शरीरों में आसक्ति रहती है।

दुःखों को सुख समझना यह तीसरी अविद्या है। देखो ! **कष्टात् कष्टतरी।** क्षुधा दुःख से भी दुःख देने वाला दुःख क्षुधा है। यदि हमें भूख न लगे तो दवाईयाँ खाते हैं। डाक्टरों के पास जाकर कहते हैं डा. साहब ! हमें इतने दिनों से भूख नहीं लग रही है। जब हमें भूख लग जाती है तो फिर हम खूब भोजन करते हैं। तरह–तरह के भोजन करके भूख मिटाने का प्रयत्न करते हैं। तो यह भी एक प्रकार से दुःख है किन्तु हम सुख समझते हैं।

इसी प्रकार के संसार के समस्त भोग **''भोगे रोगभयम्''** के अनुसार सब भोग रोग और दुःख देने वाले हैं। किन्तु हमें सुखमय प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार से अनात्म को आत्मा समझ बैठना। शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि आत्मा नहीं हैं। किन्तु हम जिस को प्यार करते हैं तो कहा करते हैं तू मेरी आत्मा है तू मेरा अंश है। तू मेरे आत्मा का टुकडा है। इस प्रकार से इस शरीर को आत्मा समझ कर पूरी आसक्ति रखा करते हैं। तो यह हुआ अनात्म वस्तु को आत्मा समझना। इस प्रकार से अनित्य वस्तु को नित्य समझना, अपवित्र को पवित्र समझना, दुःख को सुख समझना और जो आत्मा नहीं है उसे ही आत्मा समझ कर व्यवहार करना ये सब अविद्या कहलाता है। यह क्लेश है। दूसरा क्लेश है अस्मिता नाम का। अस्मिता क्लेश क्या होता है ? बुद्धि और आत्मा का मेल। **''दृकदर्शन शक्त्योरेकात्मतेव अस्मिता''**। दृकशक्ति आत्मा दर्शन शक्ति बुद्धि इनका जो मेल बना रहता है उसे अस्मिता कहते हैं। उस मेल के कारण आत्मा पर बुद्धि का प्रभाव होने के कारण सुख दुःख का अनुभव करता है। यह दो बातें हो गई। तीसरा क्लेश है राग। प्यारी वस्तु से हमें सुख मिलता है, सुख का अनुभव होता है **''सुखानुशयी रागः''**। किन्तु क्योंकि राग भी थोड़ी देर के लिये रहता है फिर उसी से द्वेष हो जाता है या एक वस्तु या राग रहता है और दूसरे से द्वेष रहता है।

''दुःखानुशयी द्वेषः'' द्वेष हो जाने पर मन में दुःख के भाव बने रहते हैं। इसलिये राग द्वेष दोनों जीव को सुखी दुःखी बनाते रहते हैं। द्वेष हो जाने से यह वस्तु बुरी लगती है जिससे मन को कष्ट होता रहता है। इसके बाद पाँचवा क्लेश है अभिनिवेश **''स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रुढोऽभिनिवेशः''** बड़े–बड़े योगी महात्मा विद्वान सब सर्व साधारण को जो भय सताता रहता है वह है मौत का भय। यह भय जीव के अन्दर रहता है। इस प्रकार से ये सारे क्लेश जीवात्मा में रहते हैं, ईश्वर में नहीं होते। अविद्या से ही कर्म बनता है **''कुशलाकुशलानि कर्माणि''** अच्छी बुरी हरकतों को कर्म कहते हैं। हम यह हाथ हिला रहे हैं तो यह कर्म नही कहलायेगा किन्तु जब क्रोध में किसी पर हाथ उठायेंगे तो वह कर्म बन जायेगा। इसलिये अच्छे बुरे भाव जिस हरकत में जुड़े हो वह कर्म कहलाता है। **''तत्फलो विपाकः** कर्म का जो फल होता है उसे कर्म विपाक कहते हैं और **''आशेरते फलपर्यन्तं कर्माण्यस्मिन्' इति कर्माशयः''**। कर्म भोग पर्यन्त कर्म जहाँ पड़े रहते हैं उसे कर्माशय कहते है। ये सारे क्लेश कर्म आदि जीवों में रहते हैं ईश्वर में नहीं। ईश्वर तो ''सदैव मुक्त सदैव ईश्वरः सदा ही मुक्त है और सदा ही ईश्वर है। इसलिये करना क्या है यह एक विचारणीय बात है। हम सबके सब जीव सत्ता में हैं। जब तक जीव सत्ता में है तब जक जन्म लेना पड़ेगा और मरना पड़ेगा। जन्म मरण के दुःखों का वर्णन मैं करता रहता हूँ। इस प्रकार से जीव सत्ता में और ईश्वर सत्ता में क्लेशकर्मादि का अन्तर है। यह अन्तर योग विद्या से दूर कर दिया जाता है। योग साधना के अभ्यास में अनेक विघ्न बाधायें आया करती हैं। ये विघ्न ही मनुष्य को उठने नहीं देती। यद्यपि विघ्न तो अनेकों हैं किन्तु योग दर्शन में नौ प्रकार के विघ्न बताये हैं। **''व्यधिस्त्यान संशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्ति दर्शनालब्ध**

भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाः"। इनमें व्याधि पहला विघ्न है। एक आदमी योग साधना आरम्भ कर देता है मन में एकाग्रता आ जाती है किन्तु शरीर में कोई बीमारी आ जाये तो साधना में विघ्न आ जायेगा। **"व्याधि धातुरसकरणवैषम्यम्"**। शरीर में धातुओं में विषमता आने से नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इससे साधना में विघ्न पड़ जाता है।

दूसरा विघ्न है स्त्यान। स्त्यान का अर्थ है चित्त की अकर्मण्यता। मन का आलसी होना। संशय तीसरा विघ्न है। संशय यह होता है – गुरुदेव ने जो मन्त्र दिया है, पता नहीं ठीक दिया है या नहीं जिसको संशय होता है उसके लिये भगवान कहते हैं **"अज्ञश्च अश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति"** जो मनुष्य अज्ञानी है और जिसमें श्रद्धा नहीं है वह संशय वाला बन जाता है। यह संशय व्यक्ति को कुछ करने नहीं देता। वहम हो जाना है संशय। मुझे अपने एक बच्चे की याद आई। उसने लाहौर में मुझसे दीक्षा ली थी। यह आज से पैंसठ सत्तर वर्ष पहले की बात है। श्री प्रभु जी की कृपा से उसका ध्यान ऊँचा चलने लगा। दर्शन इत्यादि खूब होने लगे। उसने किसी महात्मा से जो नामी धर्म प्रचारक था पूछा कि यह ध्यान कैसा है ? ठीक है या नहीं। उस महात्मा ने कहा– यह तो भ्रान्ति दर्शन है। यह ध्यान ठीक नहीं है। उस साधक ने ध्यान करना छोड़ दिया। बस ! जब ध्यान लगाना छोड़ दिया तो अनुभव बंद हो गये– कोरा रह गया।

उसका नाम सदानन्द है। आजकल शायद वृन्दावन में कहीं रहता है। एक बार वृन्दावन की गलियों में मुझे मिला था। कहता था मैंने ध्यान छोड़ दिया अब कोशिश करने पर भी मेरा ध्यान लगता ही नहीं है। क्या करूँ ? यह क्यों ऐसा हुआ ! यह हुआ संशय के कारण। एक गुरुभक्त के मन में तो संशय का नाम निशान आना ही नहीं चाहिये। इससे अगला विघ्न है प्रमाद। प्रमाद मायने असावधानी – मन का आलस्य। नियम बना लिया, सोच लिया इस नियमावली के अनुसार चलेंगे। किन्तु दो–तीन दिन अभ्यास के बाद फिर छोड़ दिया। चलो ! कल से कर लेंगे। इसका नाम है लापरवाही। **आलस्यम्-कायस्थ चित्तस्य च गुरुत्वाद प्रवृत्तिः** शरीर के भारीपन के कारण चित्त भी भारी हो जाता है और साधना में प्रवृत्ति नहीं रहती। शरीर भारी होने से नाड़ियाँ फूल जाती हैं। कफ अधिक हो जाता है। इससे आलस्य रहा करता है। पड़े रहने की आदत पड़ जाने पर साधना में प्रवृत्ति नहीं बन पाती। इसके बाद का विघ्न है अविरति। अविरति का अर्थ है – वैराग्य का न होना। ध्यान में बैठने की गुरु आज्ञा है उसकी चेष्टा तो करे किन्तु सोचता रहे उसके पास जाना था, उससे मिलना था, मेरा यह काम रह गया, मुझे दिन में यह–यह काम करने हैं आदि–आदि बातें सोचता रहे। इससे ध्यान में विघ्न होता रहे इसी का नाम अविरति है। इसके बाद आता है–भ्रान्तिदर्शन। ध्यान में गलत अनुभव हो जाये किन्तु उसे सच मानकर बर्ताव करना। इससे भी व्यक्ति भ्रम में पड़ जाता है। विचारानुगत समाधि में भी देवता भ्रमित कर दिया करते हैं। **अलब्ध भूमिकत्व** बार–बार अभ्यास करने पर किसी स्थिति को प्राप्त न कर सकने

को अलब्ध भूमिकत्व कहते हैं और अन्तिम विघ्न है अनवस्थितत्व अर्थात् साधक का चित्त किसी स्थिति को पाकर उसमें स्थिर न रहे, इसे ही अनवस्थितत्व नाम का विघ्न कहा जाता है। इसी प्रकार से ये नौ विघ्नों से बचने का एक उपाय बताया है **''तत्प्रतिषेधार्थम् एकतत्वाभ्यासः''** अर्थात् विघ्नों को दूर करने के लिये एक तत्व का अभ्यास करना चाहिये। एक तत्व का अभ्यास क्या है ? **''नास्ति तत्वं गुरोः परम्''** गुरुदेव से बढ़कर कोई तत्व नहीं है। श्री प्रभु जी अपने मुखारविन्द से बतलाया करते थे कि यदि किसी प्रकार की विघ्न बाधा आये तो गुरुदेव के चिन्तन करने से हट जाया करते हैं। या फिर ओंकार का – परमात्मा का ध्यान करें। हमने जीवन में इस बात को अनुभव करके देखा है कि जिन लोगों की साधना में कोई विघ्न पैदा हुई श्री प्रभु जी के चरणों का चिन्तन उनके मन में हुआ, वे बाधायें बिल्कुल–बिल्कुल जाती रही। किसी प्रकार का विघ्न सामने नहीं रहा। तो इस प्रकार से मैंने जीव और ईश्वर का अन्तर बताया है जीव के अन्दर ही ये बाधायें आया करती हैं। ईश्वर के अन्दर विघ्न बाधा नहीं होती। इन विघ्नों को हटाने का उपाय है एक तत्वावलम्बन। जिस बात को मैं कह रहा हूँ वह है कि गुरु देव के चरणों का अवलम्बन ही एक तत्वावलम्बन है। वह एक तत्व गुरु देव ही हैं। उपनिषद का सिद्धान्त है–

''ईशावास्यमिदं सर्वम्'' अर्थात् परमात्मा कण–कण में हैं। लोग कहा करते हैं– हरि हर जगह मौजूद है पर नजर आता नहीं। योग साधना के बिना उसे कोई पाता नहीं। ईश्वर सब जगह मौजूद है किन्तु देखने वाली आँखें मौजूद नहीं है। रुहानी जगत में जब तक प्रवेश नहीं होता परमात्मा का दर्शन नहीं हो सकता। जब अन्दर की आँखें खुल जाती है तो सर्वत्र ईश्वर का दर्शन होने लगता है। **''ईशाद्याः सकलाः देवाः दृश्यन्ते परमात्मनि''** उस परमात्म प्रकाश में सभी देवी देवता दिखाई दे जाया करते हैं। भगवान ने आन्तरिक शक्ति को प्राप्त करने के तीन साधन बताये हैं पहला है **श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्** अन्तर्दर्शन का मूल साधन श्रद्धा है। श्रद्धा युक्त मन से साधना करो। मेरु दण्ड को सीधा रखो। यदि बहुत देर तक नहीं सीधा बैठ पाते तो लकड़ी की आसा बना लो। उसका सहारा लेकर कमर को सीधा करके बैठा करो। सात्विक आहार करो तथा थोड़ा आहार करो। दूसरा साधन है "तत्परः" जो साधना में लगा रहता है। ऐसा नहीं दो–चार दिन ध्यान में बैठे। अजी कुछ हुआ नही क्या ध्यान करना। योग दर्शन बतलाता है– **''स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारासेवितो दृढ़भूमिर्भवति''**। लम्बे समय तक एक ही साधना में चलते रहो। "एके साधे सब सधे सब साधे सब जाये"। एक ही रास्ते का लम्बे समय तक आदर पूर्वक अभ्यास करना चाहिये।

तीसरा साधन है संयतेन्द्रिय रहना। जो लोग इन्द्रियों पर संयम नहीं रखने तो शक्ति प्राप्त करने पर भी वे खाली हो जाते हैं। इसलिये आनन्द कन्द श्री प्रभु जी कहा करते थे कि भाँड़े मिले पर चौदे मिले अर्थात् पात्र तो मिले पर फूटे हुये मिले। जो संयतेन्द्रिय नही है वे फूटे बर्तन की तरह खाली रहा करते हैं। फूटे बर्तन में पानी दूध कुछ भी डालोगे

निकल जायेगा। इसलिये साधक को अपने मन को कभी भी खाली नही रहने देना चाहिये। "खाली मन शैतान का वास" मन खाली रहने पर दुर्व्यसन सूझेंगी। इसलिये अपने मन को किसी न किसी काम में लगाये रखो। समय–समय पर साधना करते रहो। ब्रह्मचर्य का पालन करो। देखो ! गृहस्थ में रह कर भी तुम ब्रह्मचारी हो सकते हो। मनु जी महाराज ने कहा है–.

ऋतुकालाभिगामी स्यात स्वदार निरतः सदा
ब्रह्मचारी एव भवति यत्र तत्र आश्रमे वसन्।

यदि कोई सन्तानोत्पत्ति के लिये गृहस्थ धर्म का पालन करता है और जो अपनी पत्नी में ही रत रहता है वह किसी भी आश्रम में रहे ब्रह्मचारी ही होता है। देखो ! पति पत्नी में प्रेम होना आवश्यक है। "एक प्राण दो देह" होकर यदि रहते हैं तो वह सुखी रहते हैं, निरोग रहते हैं वहाँ सुख सम्पत्ति रहती है। घर चमक उठता है किन्तु यदि पति–पत्नी में प्रेम नहीं रहता, झगड़ा रहता है तो उस घर में दुःख का वास हो जाता है। इसलिये अपनी पत्नी में ही प्रेम रखना चाहिये। पत्नी को भी अपने पति से ही प्रेम करना चाहिये, उन्ही का चिन्तन रखना चाहिये। इस प्रकार करने से स्त्रियाँ सती कहलाती हैं। कहावत भी है "सती के पति को आँच नहीं आती"। इसलिये ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये अपनी सभी ज्ञानेन्द्रियों पर पूर्ण संयम रखो। संयतेन्द्रिय रहने का एक खास उपाय यह है कि तुम नैत्यिक व्यायाम करो। कम से कम एक घण्टा जीवन तत्व साधन अवश्य ही किया करो। इससे सारी बीमारियाँ दूर रहेंगी, मन की एकाग्रता बनेगी। भगवान पतंजलि जी ने योगी की परिभाषा करते हुये कहा है–

"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" अर्थात् चित्त वृत्तियों का पूर्ण रूप से निरोध योग कहलाता है। इसी से कैवल्य होता है जो योग का लक्ष्य है। हम अभी दुकेले भाव में हैं अकेले में नही हैं। कैवल्य होने पर हम अपने शुद्ध स्वरूप में, अकेले में हो जाते हैं। **"सत्व पुरुषयोः शुद्धि साम्ये कैवल्यम्"** प्रकृति और पुरुष दोनों ही समान रूप से शुद्ध हो जाये तो कैवल्य होता है। इस समय न प्रकृति अपने रूप में और न पुरुष अपने रूप में। आत्मा से बुद्धि चेतन हो गई। बुद्धि ने अपना रूप आत्मा को दिखा दिया। हमारे अन्दर खाने पीने सोने जागने, सुखी दुःखी होने की जो वृत्तियाँ हैं वह आत्मा के धर्म नहीं है। ये बुद्धि के धर्म हैं। समाधि का अभ्यास करते–करते योगी निर्बीज समाधि को प्राप्त हो जाता है। उस अवस्था में बुद्धि का आत्मा से संयोग टूट जाता है। इसे ही कैवल्य कहते हैं। इसलिये मेरी इन बातों को सुनकर अपने को योग ध्यान परायण बनाओ। इधर–उधर के झमेले में मत पड़े रहो। राग द्वेष मत करो। यह बहुत बुरी बात है। तुमने ध्यान की अमूल्य निधि पाई है। इसको संभाल कर रखो। इसी से सब का कल्याण होगा, भला होगा।

❊ ❊ ❊

● सम्पादकीय

अध्यात्म विज्ञान

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

श्रीमद्भगवद्गीता के दसवें अध्याय में अखिलात्मा आनन्दकन्द श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने विद्याओं में सर्वश्रेष्ठ 'अध्यात्म विद्या' को अपनी विभूति शक्ति बताया है। **'अध्यात्म विद्या विद्यानाम्'** कहकर अध्यात्म विद्या की महत्ता को प्रदर्शित किया है। अध्यात्म–विद्या को ही ब्रह्म विद्या, आत्मविद्या, योग विद्या कहा जाता है। इस विद्या को ही स्वरूपस्थिति अथवा मुक्ति के अन्यतम उपाय के रूप में वेदों में बताया गया है। भगवान् अध्यात्म ज्ञान को ही ज्ञान की संज्ञा देते हैं इसके अतिरिक्त सारा ज्ञान अज्ञान की श्रेणी में परिगणित किया है–

अध्यात्मज्ञान नित्यत्वम् तत्वज्ञानार्थ दर्शनम्
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।।

अध्यात्मज्ञान में नित्य स्थिति तत्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा का सर्वत्र दर्शन ये सब तो ज्ञान है, इसके विपरीत अज्ञान कहा गया है। इस प्रकार से अध्यात्म ज्ञान ही अलौकिक ज्ञान है जो जीव को मुक्त करने में समर्थ है। लौकिक ज्ञान मनुष्य को सुख सुविधा प्रदान कर सकता है किन्तु स्थायी आनन्द तथा आत्म लाभ नहीं दे सकता। **'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः'** अर्थात् वित्त से अथवा सुविधाओं से मनुष्य कभी भी तृप्त नहीं होता। आत्म सुख मिलने पर ही मनुष्य को संतृप्ति मिला करती है।

आज संसार भौतिक सुख की ओर जितना दौड़ रहा है अध्यात्म से वह उतना ही दूर होता चला जा रहा है। जीव शान्ति व सुख की खोज में तो है किन्तु यह स्थायी सुख है कहाँ ? यह बात हर मनुष्य नहीं जानता। स्थायी सुख अपने अन्तर में ही है। जिसकी पहली सीढ़ी मन की एकाग्रता से प्रारम्भ होती है। योग–वेदान्त में आत्मा–तत्व पञ्च कोशों से आवृत मानी गई है। अन्नमय कोश से लेकर आनन्दमय कोश है, जो भिन्न–भिन्न पर्दे की तरह आत्म तत्व को आच्छादित किये हुये है।

सर्वप्रथम मन **'अन्नमय कोश'** को विदीर्ण करता हुआ 'प्राणमय कोश' में प्रवेश करता है। इस स्थिति में साधक देहाध्यास को छोड़कर अन्तर्मुखता की ओर बढ़ता है। बाह्य जगत से अन्तर्जगत में प्रवेश पाता है। ध्यान के बल से, प्राणायाम द्वारा स्वतः ही प्राणशोधन होता है। प्राणमयकोष का पर्दा हटने लगता है। **'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्'** के सूत्र के

सिद्धान्तानुसार प्राणायाम से प्रकाश के मार्ग के आवरण का क्षय होने लगता है। इस प्रकार से प्राणायाम अन्तर्मुखता के साधनों में सर्वोत्तम साधन है। इस से दिव्य दृष्टि मिलती है। कुण्डलिनी जागरण होता है। भूत–भविष्य की घटनाओं का चित्त में स्वतः प्रकाशन होने लगता है। यहीं से सूक्ष्म जगत में साधक का प्रवेश होने लगता है। प्राणायाम के द्वारा प्राण की सुषुम्ना नाड़ी में गति होने से चित्तैकाग्रता स्वतः होने लगती है। गुरुदेव के शक्तिपात से प्राणमार्ग के संचरण का शोधन होने लगता है इसके लिये ही साधक के अन्दर विचित्र–विचित्र क्रियायें होने लगती है। साधक रुहानी दुनिया में विचरण करने लगता है। प्राणमय कोश की शुद्धि के साधन ध्यान और प्राणायाम हैं। सिद्धकृपा से यह स्वतः सम्पादित होने लगते हैं। तीसरा कोश **'मनोमय कोश'** है। ध्यान योग के द्वारा मन के परत शनैः शनैः खुलते चले जाते हैं। साधक संस्कारों का साक्षात्कार एवं भुगतान करता हुआ उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर भूमिकाओं में प्रवेश करने लगता है। मन की एकाग्रता के साथ ही चित्त की नाना प्रकार की विभूतियाँ प्रकट होने लगती हैं, यही लोक में चमत्कार के नाम से कहे जाते हैं। **मनोमय कोश** एवं **विज्ञानमय कोश** के अन्तर्गत योगी मन और बुद्धि तत्व का साक्षात्कार करता है। इनमें निहित लोकोत्तर शक्तियाँ स्वयमेव प्रकट होती रहती हैं। वितर्कानुगत, विचारानुगत एवं आनन्दानुगत समाधि में मनोमय एवं विज्ञानमय कोश के अन्तर्गत विभिन्न भूमिकाओं में होने वाली अनुभूतियों का प्रकाशन होता है। इससे आगे **आनन्दमय कोश** है यही कारण शरीर कहलाता है। इस कोश के संस्कार ही पुनर्जन्म के कारण बनते हैं। आनन्दमय कोश में ही अस्मितानुगत समाधि की स्थिति बनती है। कारण शरीर (Causal body) का भेदन हो जाने पर निर्बीज समाधि में स्थिति बनती है। यही समाधि जन्म मरण की उच्छेदक बनती है। समाधि में बुद्धि स्थिर हो जाती है। यही प्रकृति का ठहराव है। सामान्यतः नियम है **'चलं च गुणवृत्तम्'** अर्थात् गुणवृत्ति चलायमान रहती है। किन्तु गुणातीत अवस्था में प्रकृति पीछे रह जाती है इसलिये तज्जन्य कार्य भी नहीं होते।

वृत्ति निरोध के बाद जो आत्म स्थिति बनती है वही **'अनामय'** पद है, परम पद है। यही योगी का वाचक है। यही अध्यात्म की पराकाष्ठा है। गीता में भगवान ने 'स्वभाव' ही 'अध्यात्म' कहा है। यहाँ पर 'स्वभाव' का अर्थ वह नहीं है जो सामान्यतया ग्रहण किया जाता है। 'स्वभाव' से तात्पर्य आत्मस्थिति से है। लोक व्यवहार में स्वभाव प्रकृति को कहते हैं। हर व्यक्ति का स्वभाव भिन्न–भिन्न होता है। आध्यात्मिक अर्थ में स्वभाव का ही दूसरा नाम 'स्वस्थ' है। 'स्व' नाम आत्मा का है जो उसमें स्थित रहता है उसे ही 'स्वस्थ' कहते हैं। यह 'स्वभाव' परिवर्तनशील न होकर स्थायी होता है। जब तक मनुष्य योगी नहीं बनता उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती है। **''नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य''** अर्थात् जो योगी नहीं है उसकी बुद्धि

स्थिर नहीं रहती है। बुद्धि के स्थिर न रहने पर भावना ठीक नहीं बनती। भावना के ठीक न होने पर शान्ति नहीं होती है और शान्ति के अभाव में सुख कहाँ से मिल सकेगा। योगी ही 'स्थित प्रज्ञता' को प्राप्त होता है। इससे सम्पूर्ण कामनायें नष्ट हो जाती हैं इसी स्थिति में उपनिषद् वाक्य **'क्षीयते चास्य कर्माणि'** चरितार्थ होती है।

एक मनुष्य धार्मिक है वह आध्यात्मिक भी हो यह आवश्यक नहीं है। धार्मिक व्यक्ति पुण्य–पाप स्वर्ग नरक, ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखने वाला होता है। वह आस्थावान होता है। किन्तु निरन्तर तत्परता के अभाव में वह आध्यात्मिक नहीं कहला सकता। आध्यात्मिकता के लिये भगवान् ने तीन बातें आवश्यक बताई हैं। पहली बात श्रद्धायुक्त होना, साधना में निरन्तरता अथवा तत्परता और संयतेन्द्रियता। यदि इनमें से किसी की भी कमी है तो साधक आगे नहीं बढ़ सकता। भगवान् ने गीता में युक्त योगी के लक्षण बताये हुये हैं। जो ज्ञान विज्ञान से तृप्तात्मा हो, कूटस्थ हो, जितेन्द्रिय हो, जिसकी दृष्टि में मिट्टी का ढेला, पत्थर सोना बराबर हो वह युक्त योगी होता है। ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा का तात्पर्य यही है कि लौकिक ज्ञान से युक्त हो, वह विज्ञानी हो, अध्यात्म ज्ञान से परिपूर्ण हो तो वह युक्त योगी कहलाता है।

'अध्यात्म' केवल आस्था और विश्वास पर आधारित नहीं है प्रत्युत प्रत्यक्ष अनुभूति में लाया जाने वाला विज्ञान है जो ध्यान–योग के द्वारा विकसित होकर दिव्य दृष्टि प्रदान करने वाला है। गीता के समान 'अध्यात्म' को प्रकाशित करने वाला दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है। इसलिये मनुष्य को प्रयत्नशील रहकर इस अन्तर्विद्या को धारण करके परम कल्याण की ओर बढ़ना चाहिये। यह अध्यात्म योग (Spiritual Science) ही मनुष्य के निःश्रेयस (मुक्ति) का एकमात्र साधन है।

❊ ❊ ❊

शोक संवेदना

श्री रामनवमी के दो दिन पश्चात् दिल्ली निवासी श्री रोशनलाल गुप्ता का ह्रदयरोग के कारण निधन हो गया। वे श्री गुरुदेव के बहुत पुराने सेवकों में से एक थे। इनके परिवार के शोक संतप्त सदस्यों के प्रति 'सिद्धयोग' परिवार हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है। प्रभु उन्हें धैर्य धारण करने की शक्ति और दिवंगत आत्मा को अपने चरणों में स्थान दें—यही प्रार्थना है।

—संपादक

मेरे सद्गुरुदेव

विजय सिंह

एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान्परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानिमहे।।

"नीतिशतक"

नाथ सम्प्रदाय के अमर सिद्ध भर्तृहरि महाराज ने व्यक्ति के व्यवहार का कितना सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उपरोक्त नीति कथन में किया है। सत्पुरुष सदैव दूसरों के हित करने में मनसा, वाचा, कर्मणा लगे रहते हैं। उन्हें अपने विषय में कोई सोच–विचार करने का समय ही नहीं। उनकी एक ही लगन होती है– दूसरों की सहायता कैसे तन–मन–धन से करें। "परहित सम धर्म नहिं भाई" इनके संसारिक बहिर्मुख जीवन का उद्देश्य रहा करता है। संत–महापुरुषों का जीवन इसी तरह का हुआ करता है। निन्दा–स्तुति से परे "सर्वभूत हिते रताः"। अर्न्तमुखी होने पर परमात्मा में लवलीन रहना। प्रकृटस्थ होने पर जीव सेवा में समय व्यतीत करना।

भाई महेन्द्र नारायण जी के अध्यात्मिक विकास के लगभग आठ वर्ष उत्तमोत्तम उत्थान के रहे। उनकी जीवन चर्या में रात्रि विश्राम तीन चार घण्टों का था। उठते ही उन्हें अन्तर में अजपा का जाप चलता हुआ तुरन्त बोध होता। निद्रा भी योग–निद्रा अधिकांशतः हुआ करती थी। दिव्य स्वप्न बोध की बातें भी यदा–कदा सतसंगियों को बताया करते थे। वह भी सम्प्रज्ञात समाधि जन्य अनुभव ही था। सत्व के विकास के साथ हमने उनमें यह स्पष्ट देखा था कि किसी भी दुःखी–सुखी व्यक्ति को वे सद्गुरु चरणों से जोड़ने के लिये एक विशेष छटपटाहट रखते थे। उनको जो प्रत्यक्ष लाभ सद्गुरु चरणों से एहिक व अलौकिक प्राप्त हो रहा था उसे वह दूसरों को भी प्राप्त हो, ऐसा उनकी आन्तरिक इच्छा थी। वे सर्वसमर्थ सद्गुरुदेव के कृपा कोर से अतिशय लाभान्वित थे। अतः वे चाहते थे कि दूसरे लोग भी सद्गुरु भगवान के आश्रय को ग्रहण कर लौकिक तथा पारलौकिक लाभ उठायें। वे कहते थे –

"भुक्ति मुक्ति प्रदातारम् तस्मै श्री गुरवे नमः।" सद्गुरु देव लोक जगत में तथा अध्यात्मिक जगत दोनों में सहायक रहा करते हैं।

भाई जी को आरोग्यता के साथ–साथ समाधि का अपार सुख सद्गुरुदेव ने प्रदान किया था। क्षेत्र में, कछवा बाजार में सद्गुरु कृपा–पात्र होने के कारण उन्हें लोग अत्यन्त

आदर एवं सम्मान देने लगे थे। अन्तर में अध्यात्म तृप्ति बाहर लोक ऐषणाओं में भी तृप्ति। वे गदगद् कण्ठ सद्गुरुदेव भगवान के ऐश्वर्य से हम लोगों को परिचित कराया करते थे। पहले उनको भगवान गणपति में लयता प्राप्त हुई। आगे शिवरूप में लीन होकर हिममण्डित हिमालय के उत्तुंग शिखरों पर धवल ज्योति वेष्ठित अपने स्वरूप को देखकर मुग्धता को प्राप्त होते थे। कभी बताते आज सद्गुरु भगवान ने आकाश मार्ग से लोक लोकान्तरों में भ्रमण कराये। मणिमुक्ताओं एवं अमूल्य रत्न जड़ित हंस वाहित यान में वे कृपालु हमें उसी प्रकार बिठा देते जैसे कोई पिता अपने अबोध किशोरवय बालक को बिठाता है। मैं गुरुकृपा से शिवरूप में बैठा यान द्वारा सद्गुरु भगवान के पीछे–पीछे आकाश गमन करता। सद्गुरु के चरणकमलों से ध्वनियुक्त निकलता तेज सर्राटे से दिगदिगन्त को व्याप्त करता होता था। देवलोकों से श्वेत पुष्पों की वर्षा होती रहती। हर तरफ से श्री गुरुदेव भगवान के नाम का जय–जयकार सुनाई पड़ता था।

भाई जी ने कई बार त्रिदेवों एवं अगणित ऋषिमुनियों द्वारा श्री सद्गुरु भगवान के चरण–कमलों की आरती स्तुति करते देखा था। श्री सद्गुरु भगवान के दिव्य तेज को शिवरूप में लीन भाई जी को सहन करना कठिन हो जाता था। सद्गुरु भगवान का अखण्डमण्डलाकार प्रकाश की तीव्र ध्वनि युक्त उठती लहरों पर नेत्र का टिकना सम्भव नहीं हो पाता था। शिवलीन आँखें स्वयं बन्द हो उठती थीं।

उन दिनों अनेक युवक–युवतियों, वयस्क–वृद्धों को गहरी ध्यान–समाधि के गूढ़ भाव में डूबा मेरा संशयी मन, उनके बाह्य व्यक्तित्व का मन ही मन आलोचना करके हैरान हो उठता था। आखिर इनमें ऐसी क्या विशेषता है ? जिससे ये लोग इस अपरमित आनन्द के भाजन बने हैं।

इस प्रौढ़ावस्था में जो कुछ सद्गुरु कृपा से समझ में आया है वह है उनके अन्तःकरण में स्वयं सद्गुरु भगवान द्वारा दिया गया श्रद्धा, श्रद्धा, श्रद्धा का दान।

उपनिषद में कहा गया है–

कस्मिन्नु श्रद्धा प्रतिष्ठितेति हृदय इति होवाच हृदयेन।
हि श्रद्धां जानाति हृदये ह्येव श्रद्धा प्रतिष्ठिता भवतीत।।

श्रद्धा का आधार क्या है ? उत्तर दिया गया मानव हृदय। क्योंकि हृदय से श्रद्धा का अनुभव होता है। सत्य तो यह है कि श्रद्धा केवल हृदय गत् भावों पर टिकी है। जब तक हमारा हृदय अपनों के प्रति तथा गैरों के प्रति शुद्ध नहीं होगा। अन्तःस्फूर्ति, रसपूर्णता, प्रकाशमानता नहीं होगा। चाहे जितने विद्वान होलें। चाहे जितना देर आसन बाँध कर बैठे रहें। कुछ नहीं होता ऐसा तो नहीं। परन्तु जैसा भाई लोगों को बोध होता था वैसा सद्गुरु के प्रति, सतसंगियों के प्रति श्रद्धा एवं स्नेह प्रेम के बगैर सम्भव नहीं है।

ऋग्वेद में इस श्रद्धा की महत्ता गायी गयी है।

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्य आकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु।।
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः।।

देवगणभी अपनी उपासना में आत्मा की प्रेरणा से श्रद्धा की वन्दना करते हैं। हृदय के सत्वभावों की रचना श्रद्धा है। श्रद्धा के द्वार से आत्म प्रकाश प्रवेश करता है। प्रातःकाल में श्रद्धा, मध्यान्ह में श्रद्धा सूर्यास्त में श्रद्धा। सब समय श्रद्धा पूरित हृदय होने का वरदान भी श्रद्धा से ही मानव को प्राप्त होता है। हे श्रद्धा, हम सबको श्रद्धा का वरदान दो।

हम जिसे ध्याते हैं। जिसे भजते हैं। यह ध्यान, यह भजन उनके स्वरूप बोध के बिना सम्भव है क्या ?

अतः अब भास होता है कि गणपति में लीन, शिव में लीन, आगे चलकर सद्गुरु में लीन भाई श्री महेन्द्रनारायण ने उन तत्वों का बोध श्रद्धा से पूरित हृदय के कारण किया था।

श्री भगवद्‌गीता में कहा गया है–

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्ध स एव सः।।

अर्थात् व्यक्ति को व्यक्तित्ववान उसकी श्रद्धा बनाती है। जैसी श्रद्धा वैसा व्यक्ति।

अतः सद्गुरु का परम रूप श्रद्धामय है। क्योंकि सद्गुरु श्रद्धा में डूबा हुआ तथा जो अपने इन्द्रियों को वश में कर लिया है। ऐसा श्रद्धापूरित व्यक्ति आत्म ज्ञान को प्राप्त कर परमशान्ति को पाता है।

संतज्ञानेश्वर जी हर समय सद्गुरु स्तवन से ही दूसरों को प्रबोध कराते हैं। वे कहते है कि सद्गुरु की महिमा से ही जीवोद्धार सम्भव है। सद्गुरु जी परमात्मप्राप्ति के साधन रूपी जंगल के बसन्त, ब्रह्मविद्या के एक मात्र उद्बोधक आकारहीन होकर भी "कृपा सिन्धु नर रूप हरि" करूणा की प्रत्यक्ष मूर्ति हैं। अविद्या के भवाटवी में जीवभाव को भोगने वाले चैतन्यस्वरूप जीव की करुण पुकार सुनकर करूणार्द्र होकर नर रूप में अवतरित होते हैं। ज्ञानेश्वर जी कहते हैं मायारूपी मदमस्त हाथी को वशवर्ती कर मुक्तारूपी मोतियों को सद्गुरु शिष्य को देते हैं ऐसे सद्गुरु को बारम्बार प्रणाम। अहा ! जिनके दृष्टिपात से सर्वबन्धन (सम्पूर्ण चक्रों के भेदन से प्राप्त परम स्वातंत्र इच्छा, ज्ञान, क्रिया, चित्त एवं आनन्द का भाव) यहाँ मोक्षरूप हो जाता है। जिनके कृपा से ज्ञाता ज्ञेयरूप बना जाता है। सद्गुरु कैवल्य का दान देने में छोटे–बड़े, राजा–रंक, गुणी–दुर्गुणी आदि का भेद नहीं करते और द्रष्टा के दर्शन में शिष्य के सहायक होते हैं। ऐसे सद्गुरु को मेरा बारम्बार चर्तुदिक प्रणाम, सर्वकाल प्रणाम निवेदित है।

भावपूर्ण सद्गुरु की महिमा में कहा गया मंत्र श्लोक का हमें स्मरण करना चाहिए –

ॐ नमः शिवाय गुरुवे सच्चिदानन्द मूर्तये।
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे।।

❋ ❋ ❋

मा फलेषु कदाचन्

कृष्ण कुमार पाण्डेय (गोरखपुर)

गीता योग योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण के मुखारबिन्द से निकली लोक कल्याण कारक वाणी है। किन्तु व्यक्ति आज वर्तमान युग की चकाचौंध में भ्रमित है। मनुष्य की स्थिति ऐसी हो गयी है कि वह थोड़े से कर्म करके अधिक फल की आकांक्षा रखता है। वह थोड़े से कर्म द्वारा सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करना चाहता है। क्योंकि आज की भौतिकवादी और भोगवादी प्रवृत्ति ऐसी है। भोगवादी प्रवृत्ति ने मनुष्य के मन को मथ डाला है। हमारी स्थिति चंचल जल के लहर की तरह हो गयी है। जिसको अभ्यास और वैराग्य के सूत्र की भी आवश्यकता नहीं रह गयी है। इतने भाग दौड़ का परिणाम क्या होता है ? परिमितता अर्थात् हमें जितने की आवश्यकता है, उससे अधिक फलाशा का परिणाम नहीं प्राप्त होता है। जिस प्रकार माँ यह समझती है कि बच्चे को कितना दूध सुपाच्य होगा। उतने मात्र में ही उसे दूध पिलाती है। ईश्वर भी उसी प्रकार आर्त मानव की पूर्ति करता है।

एक बार की बात है। देवता, दानव और मानव तीनों प्रजापति के पास उपदेश सीखने गये। सभी ने अपनी-अपनी समस्या प्रजापति से अलग-अलग ढंग से रखी। सबको सुनने के बाद प्रजापति ने अपने उपदेश मात्र 'द' वर्ण में कहा। अब इस द वर्ण का अर्थ तीनों ने अपने-अपने तरह से लगाया। देवताओं ने कहा-हम लोग कामी और विषय भोग में लिप्त हैं। दानवों ने कहा- हम दानव बड़े क्रोधी और दयाहीन हो गये हैं। अतः ब्रह्मा ने हमें दया करो की शिक्षा दी। मानवों ने सोचा हम लोग बड़े लोभी और धन संचय के पीछे पड़े हैं। अतः प्रजापति ने दान करने का उपदेश दिया है। सभी ने प्रजापति के अर्थ को अपने ढंग से समझा जो उपयुक्त ही था। इस उपदेश से प्रजापति ने कुछ त्याग की ही शिक्षा दी। त्याग का अर्थ फल में बहुत आसक्ति नहीं। सूक्ति कहती है-"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" अर्थात् किसी भी वस्तु का उपयोग त्यागपूर्वक करना चाहिए। इससे किसी के अधिकार के छिनने का भय नहीं रहता है।

जिस समाज में रहकर हम जीवनयापन कर रहे हैं, इसमें सबका समान रूप से अधिकार है। यह हो सकता है कि व्यक्ति के कर्मानुसार कुछ आनुपातिक भेद हो सकता है। जैसे पाँडव पाँच भाई थे। लेकिन भीम अधिक भोजन करने वाले थे। तो सभी भाई भीम के लिए परोसे गये भोजन से अधिक करने के लिए थोड़ा-थोड़ा भोजन अपने थाली से दे देते थे। यह है फल त्याग की प्रवृत्ति। भोजन का फल क्या है ? शरीर की तुष्टि और पुष्टि। थोड़ा-थोड़ा भोजन देने से अन्य पाँडवों के शरीर की भी पुष्टि होती थी। भीम वृकोदर थे। अतः उससे उनके शरीर की पुष्टि उस अतिरिक्त भोजन से हो जाती थी। हमारा मुख्य प्रयोजन उस साधक समुदाय से है, जो साधन में लगा है। उससे सत्संग करने की उत्कंठा

है। ऊपर दो उपाख्यान फल त्याग की ओर ही संकेत करते हैं। दोनों जगह फल त्याग की ही प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से बन गयी है। अथवा कर्म फल त्याग की आवश्यकता है या नहीं इसका समाधान गीता के दूसरे अध्याय से होगा। जहाँ योगेश्वर श्री कृष्ण ने अर्जुन को कर्म के बारे में उपदेशित किया।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।

अर्थात् हे अर्जुन तुम्हारा कर्म करने मात्र में अधिकार है फल की कभी आशा न कर, तथा न तो फल में तुम्हारी वासना ही हो। ऐसा भी नहीं होना चाहिए कि फल के न प्राप्ति से कर्म को ही न करो।

सत्संगी भाइयो ! वास्तविकता यह है कि कर्म फल हमारे किये गये कर्मों की कुशलता, चातुर्यता, कौशलता एवं गम्भीरता पर निर्भर है। जैसे यदि हमें किसी परीक्षा को पास करना है तो उसके विविध आयाम होते हैं। उन सब को एकाग्रता से करना होगा। उसमें कितने एकाग्रता की आवश्यकता होगी यह कोई सद्गुरु ही बता सकता है। तब उसके अनुसार कर्म करने पर हमारी पात्रता एवं योग्यता के आधार पर उस कर्म का फल प्राप्त हो सकेगा। यहाँ तो सद्गुरु की कृपा भी उस कर्म फल में सहायक हो जायेगी। उसी प्रकार जीवन में और भी विभिन्न प्रकार के कर्म हैं जिसमें हम सद्गुरु की सहायता नहीं लेते हैं। मसलन व्यवहारिक जीवन के आपूर्ति हेतु कृषि करना, व्यवसाय करना, या अन्य क्रियाओं को करना सम्मिलित किया जा सकता है। इन सब कार्मों में कर्मफल की वासना होनी ही नहीं चाहिए। क्योंकि ये समस्त कर्म हमारे कदाचित पूर्व और वर्तमान कर्म संस्कारों के प्रभाव से प्रभावित होते हैं। लौकिक जगत के व्यवहारों से कर्मफल के सिद्धान्त को आसानी से समझा जा सकता है। इसीलिए भगवान ने कर्मफल के प्रति वासना को त्यागने के लिये कहा है। किसी कर्म के प्रति यदि व्यक्ति की वासना होगी तो निश्चय ही उसमें आसक्ति बढ़ेगी। आसक्ति ही व्यक्ति को बंधन में डालने वाली होती है। जितनी ही आसक्ति कर्म के प्रति होगी वासना का बंधन उतना ही जकड़ता चला जायेगा। साधक साधन पथ से निश्चय ही च्युत हो जायेगा। वासना के न होने से कर्म के प्रति राग, द्वेष आदि नहीं होगा।

साधक राग, द्वेष को इसी कर्मो के त्याग के अभ्यास से क्रमशः वैराग्य की ओर प्रवृत्त होता चला जायेगा। वैराग्य से तात्पर्य साधक में किसी भी कर्म के प्रति कर्तापन का बोध न होकर कर्म के प्रति ही लगाव है। जैसे किसी यन्त्र को संचालित करने के लिये यंत्र के अवयव महत्वपूर्ण होते है, लेकिन शक्ति उसकी सर्वोत्कृष्ट अवयव होगी। क्योंकि शक्ति के बिना वह चल नहीं सकता है। पंखा बिजली के अभाव में कर्म नहीं कर सकता। उसी प्रकार साधक को भी यह मानकर कर्म करने की आवश्यकता होती है कि कोई कर्म साधक का नहीं है। सारे कर्म साधक के उपादान साधन है लेकिन वह सब परमात्मा उससे कराता है। हम उसको क्रमशः करते चलते हैं। यही हमारा धर्म है। हमारा कोई कर्म है ही नहीं

समस्त कर्म परमात्मा द्वारा निर्धारित है। जिसको हमसे वह परमात्मा समय से कराता चला जायेगा। साधक मजबूर होकर उस कर्म को करने के लिये बाध्य होगा। जैसे किसी को प्यास लगी हो तो वह प्यास के शान्ति हेतु जल ग्रहण के लिए किसी सीमा तक ही नहीं ग्रहण करने का साहस कर पायेगा। अंततः उसे जल ग्रहण करना ही पड़ेगा। जल ग्रहण के पश्चात् ही उसे शान्ति मिल सकती है। अन्यथा वह अनासक्त भाव से कर्म में लिप्त रहेगा। कर्म भी उसके लिये ठीक से नहीं सधेगा। जिसका परिणाम होगा कि कर्मफल स्वाभाविक रूप से उसे ठीक से नहीं मिल पायेगा। इसीलिए कर्म को कर्त्तव्य बोध के साथ करने की आवश्यकता होती है। फल के प्रति कभी भी स्पृहा नहीं रखनी चाहिए।

परिवर्तनशील लौकिक जगत की तरह हमारे कर्म भी परिवर्तनशील रहते हैं। जैसे बालक को बाल्यावस्था में अध्ययन की आवश्यकता होती है फिर पुनः वह सयाना होता है उसके कर्म की रूपरेखा भी बदल जाती है। यहाँ उसे दूसरे प्रकार का कार्य करना पड़ता है। उस कर्म के साथ उसे अपेक्षित फल प्राप्त होता रहता है। कदाचित् वह उस कर्म के फल को जान भी नहीं पाता और अप्रत्याशित फल प्राप्त कर लेता है। इस अप्रत्याशित फल के कई विधान हो सकते हैं। एक तो पूर्व जन्म के कर्मों का परिणाम हो सकता है। जैसे कोई योग भ्रष्ट साधक जन्म लेता है तो किसी उच्च कुल में जन्म लेता है। गीता में भगवान ने कहा--प्यारे अर्जुन कोई भी शुभ कर्म करने वाला अर्थात् भगवदर्थ कर्म करने वाला दुर्गति को नहीं प्राप्त होता है।

प्राप्त पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।

पुनः कहा--

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।।

अर्थात् वैराग्यवान पुरुष उन लोकों में न जाकर ज्ञानवान योगियों के ही कुल में जन्म लेता है परन्तु इस प्रकार का जन्म दुर्लभ है।

तत्र तं बुद्धि संयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।।

वह पुरुष वहाँ उस पहले शरीर में साधन किये हुए बुद्धि के संयोग को अर्थात् समत्वबुद्धि के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त होता है। वह भगवत्प्राप्ति के निमित्त अच्छी प्रकार यत्न करता है।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते।।

अर्थात् वह साधक विषयों के वश में हुआ भी उस पूर्व के अभ्यास से ही निःसन्देह भगवत की ओर आकर्षित किया जाता है तथा समत्वबुद्धि रूप योग का जिज्ञासु भी वेद में

कहे हुए सकाम कर्मों के फल का उल्लंघन कर जाता है।

गीता के उपर्युक्त उपदेशों से स्पष्ट आशय निकलता है कि साधक या साधारण पुरुष भी कर्मों के प्रति आसक्त भाव से करने पर पथ भ्रष्टता होगी। यदि कर्म भाव से किया जाय तो कदाचित् गुरुदेव की कृपा से ऐसी स्थिति नहीं होगी। साधक भाइयों गुरुदेव भगवान के उपदेशों तथा व्यक्ति के शंका समाधान के सन्दर्भ में ऐसी तमाम शंकाओं की निवृत्ति उनके द्वारा हो जाती थी। जिसको मात्र स्मरण करने से कल्याण के भागी बन सकते हैं। इसलिए आवश्यकता है कि हम मा फलेषु कदाचन की वृत्ति को सदैव बनाये रखें।

❊ ❊ ❊

गुरुदेव तुम्हारे चरणों में

प्रेषक—जगदीश राय बंसल 'अधम' , (गोहाना)

एक योग की गंगा बहती है, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में
प्रभु रामलाल के चरणों में, गुरुचन्द्रमोहन के चरणों में
मैं जन्म–जन्म का भटका हूँ– अब शरण तुम्हारी आया हूँ
हम भूले भटके बच्चों का, कल्याण तुम्हारे चरणों में। एक......
दुखियों के कष्ट मिटाते हो, दुख लेकर सुख पहुँचाते हो
मिले जन्म मरण से छुटकारा, जो आए तुम्हारे चरणों में। एक ....
एक बार जो दर्शन पाता है, दिल आपको ही दे जाता है।
गुप्त भरे हैं भक्ति के, भण्डार तुम्हारे चरणों में। एक........
चरणों का बिछड़ा शरण पड़ा, हाथ जोड़ तेरे द्वार खड़ा
काटो ८४ का चक्कर, है दास तुम्हारे चरणों में। एक.....
सुनता हूँ गुरु भाईयों से, तुम भव सागर के खेवैय्या हो
डूबती नैय्या पार करो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में। एक......
संस्कार चाहे मेरे मैले हो, पर आपको कोई बाधा नहीं
सर्व समर्थ अनन्ता के ये, अधम तुम्हारे चरणों में। एक...

❊ ❊ ❊

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह (बलिया)

प्यासी अँखिया दर्शन से,
कब होगी निहाल।
प्रभुजी रामलाल, गुरुजी रामलाल।

तेरी महिमा अपरम्पार, देश देशान्तर जय जयकार,
पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, पार न पाया यह संसार,
भूला भटका मैं इक राही, कैसे करूँ जीवन न्योछावर,
तुम पापों का तम मिटाते, पापी जनों का मैं सरदार,
सुना है तेरे दिव्य तेज से,
रहे नहीं जंजाल।
प्रभुजी रामलाल, गुरुजी रामलाल।

सिद्धयोग की न्यारी छाया, चारों तरफ प्रभु की माया,
तेजोमय है छटा निराली, दिग्विजयी है तेरी काया,
यहाँ-वहाँ मैं जहाँ भी देखा, हर जगह तुझे ही पाया,
फिर भी मन ये पागल जो, खुद को कितना भटकाया,
अब शरण तिहारी आया मैं,
ले नई सुर ताल।
प्रभुजी रामलाल, गुरुजी रामलाल।

तू मात-पिता का प्यार हो, मानव का जीवन सार हो,
गीता का उपदेश तुम्हीं हो, मंगलमय करता हो,
मस्तानी वीणा के प्रभुजी, अमृत धुन और तार हो,
कारण-कार्य तूही जग के, सृष्टि का पालनहार हो,
राजेश अपने लल्ला को,
दर्शन दो तत्काल।
प्रभुजी रामलाल, गुरुजी रामलाल।

* * *

''संस्कार शक्ति व साधना शक्ति''

(भाग-१३)

—कु० रुक्मिणी वर्मा (सहारनपुर)

पूर्व प्रकरण में प्रसिद्ध योगियों व योगनियों के बारे में ज़िक्र करते हुए यह बताया गया था कि इन महापुरुषों ने जीवन में कितना संघर्ष किया था। अतः वैराग्य धारण करना तथा आत्मनिवेदन करना हँसी खेल नहीं है। छोटे—मोटे वैराग्य से व तप के अभ्यास से तथा थोड़ी देर के आत्मनिवेदन से यदि मन एकाग्र होता तो हजारों व्यक्ति मोक्ष के नित्य अधिकारी बनते क्योंकि इस पृथ्वी पर इतना दुख ही दुख है कि उन्हें भोगते हुए भी मन उदासीन सा हो जाता है तथा संसार की क्षणभंगुरता स्पष्ट दिखायी देती है, अन्दर हृदय में ज्ञान भी उपजता है कि ईश्वर का नाम ही सत्य है बाकी उसके अलावा सब कुछ मिथ्या है परन्तु फिर भी निष्काम भक्ति हृदय में नृत्य नहीं करती । न जाने कितनी युवा स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं, उस समय उन्हें संसार का कोई व्यक्ति या वस्तु प्रिय नहीं लगते। कातर होकर भगवान को पुकारती भी हैं। न जाने कितनी महिलाओं के जवान व इकलौते पुत्रों की मौत हो जाती है, गोद फिर खाली हो जाती है। पति—पत्नी जगत से उदासीन व गमगीन हो जाते हैं, भगवान के आगे अपना दुख भी रोते हैं। न जाने कितने व्यक्ति भूकम्प, बाढ़ व तूफान में बेघर व बेसहारा हो जाते हैं, कितने बच्चे अनाथ हो जाते हैं, व्यापार में घाटा ही घाटा, कर्ज ही कर्ज, मकान दुकान सब बिक जाता है, प्रभु के आगे उस हालत में परिस्थितियों के शिकार ये व्यक्ति रोते भी हैं, चिल्लाते भी हैं, हाय—हाय के साथ—साथ हरि—हरि भी कहते हैं परन्तु वैराग्य जीवन में नृत्य नहीं कर पाता।

हजारों मुर्दे नित्य इस पृथ्वी पर फूँके जाते हैं, लाखों आदमी हजारों मुर्दों के पीछे "राम नाम सत् है, सत् बोलो गत् है" कहते जाते हैं, मुर्दों को अग्नि दी जाती है, फिर भी बस १३ दिन तक उड़ छू वैराग्य होता है वह भी मुर्दे के खास सम्बन्धी को, अन्य लोगों को नहीं जो मुर्दे के पीछे 'राम नाम सत्य है', कहते जा रहे थे। इसी वैराग्य को मरघटिया वैराग्य कहा जाता है। नितान्त दुख ही दुख है इस पृथ्वी पर तथा लोग अपने दुखों का रोना रोने के लिये ईश्वर के आगे प्रार्थना करते हैं, मनौती मानते हैं, बोल कबूल करते हैं, तीर्थ यात्रा बोलते हैं वृक्षों पर (मान्य वृक्ष जो कामना सिद्ध करने के लिये विख्यात हैं) धागों की गाँठ लगाते हैं। दुर्गा माँ का नारियल चुन्नी भेंट करते हैं, रात्रि को माता का जागरण कराते हैं, चौकी लगवाते हैं, कीर्तन बोलते हैं कि शादी बेटे की या बेटी की या रिश्ता पक्का हो जाये या पौत्र हो जाये तो कीर्तन करायेंगे। अखण्ड रामायण का पाठ रखेंगे, भागवत का पाठ करेंगे, तीर्थों पर जाकर भण्डारा करेंगे, दान—पुण्य करेंगे, किसलिये ? — मात्र इसलिये कि दुख कम हो जाये। ईश्वर क्या कोई व्यापारी है, जो इस प्रकार के नकाबी रुदन

से हमें अपनी पावन भक्ति देगा। उसे सब मालूम है कि यह सारी पूजा, भेंट, कबूल, जागरण व रुदन सब स्वार्थ वश है, इसे मैं नहीं, मात्र भोग चाहिये। ईश्वर ठीक करता है जो आसनी से पसीजता नहीं, नहीं तो उसकी शक्ति व भक्ति की लोग बोलियाँ लगाते व उसकी कदर न करते। कबीर दास जी बिल्कुल सटीक लिखते हैं –

होई ऐसी दुनिया दीवानी, भक्ति-भाव न बूझे जी।
कोई आये तो बेटा माँगे, यही गुसाईं दीजे जी।
कोई आये है दुख का मारा, हम पर कृपा कीजे जी।
आता है कोई वृद्ध रोगी, मुझको मुक्ति दीजे जी।
कोई आये तो दौलत माँगे, भेंट रुपइया कीजे जी।
कोई करावे विवाह-सगाई, सन्त गुसाईं रीझे जी।
साँचे का कोई ग्राहक नाहीं, झूठे जगत पतीजे जी।
नाहक ही दिल प्रभु का बोलो, कैसे नरम पसीजे जी।
कहत कबीर सुनो भई साधो, इन अन्धों को क्या दीजे जी ?

वास्तव में ईश्वर को छोड़कर यदि दूसरी वस्तु की कामना है तो वह अन्धा ही है। वह सकाम भक्ति से नहीं, निष्काम भक्ति से मिलता है तथा निष्काम भक्ति करना पुण्यशाली जीव के भाग्य में ही है क्योंकि पूर्ण आत्म निवेदन करना पड़ता है इस राह में, सब कुछ आँखों के आगे जलकर राख हो जाये तो भी चुप–चाप सहन करना होता है। ना शिकायत की गुंजाइश रहती है ना दया की भीख की। बाहर फैले धुएँ व आग को गर्म साँसों के साथ चुपचाप पीना पड़ता है और होंटों को सीलना पड़ता है, तार–तार होना पडता है। जन्म–जन्मातरों की बू को जब तक अन्तर्मन से निकाल नहीं देता तब तक कहाँ भक्ति की पराकाष्ठा तक पहुँचता है जीव ! जिस–जिसने निष्काम भक्ति की, उसकी हर बू को परमात्मा ने ठोकरें खिला–खिलाकर निकाला, बिल्कुल निमाना दास जब तक न बना दिया तब तक अपनी हार्दिक प्यार की दौलत नहीं बख्शी। जगत प्रसिद्ध मीराबाई को भक्ति यूँही सहज प्राप्त नहीं हुई। पग–पग पर कष्ट उठाये इस पुण्यशीला, भक्तिन, योग–योगिनी ने। समर्थ गुरु रविदास जी ने भी इनकी काफी परीक्षा ली, हर दुर्गुण से निकाला तब पूर्ण गुरुभक्ति प्रदान की। जैसे–जैसे समर्पण, बढ़ता गया, तैसे–तैसे भक्ति रस भी पगता गया। **समर्पण का उदाहरण**–मीरा छिपकर अपने गुरुदेव के दर्शन को जाया करती थीं। महल में ऊपर से नीचे तक साड़ियों की गाँठ बाँधकर लटका दिया करती थी, तब उनके सहारे नीचे उतर कर अँधेरे में अपने गुरुदेव के दर्शन को जाया करती थीं। इस कार्य में उनकी एक प्रिय दासी, जो सखी की तरह व्यवहार करती थी, इनकी सहायता करती थी। गुरुजी समझ गये कि प्रेम तो मुझसे व हरि से करती है, परन्तु अभी समाज व परिवार तथा पति से डरती है। पूर्ण

समर्पण अभी नहीं है।

अतः एक दिन पूछ लिया कि बेटी ! तू इतनी सुबह ही सुबह (भोर से पहले) क्यूँ आती है ? मीरा बाई ने स्पष्ट बता दिया कि घरवालों के व समाज के डर से चुपके–चुपके आती हूँ। गुरुजी ने कहा कि बेटी ! तू यदि समाज व परिवार से इतना भय खाती है तो मेरे पास मत आया कर। आना है तो आज्ञा लेकर आ। जैसे–तैसे मीरा ने पति को मनाया और फिर गयी। फिर गुरुजी ने पूछा कि फिर भी इतनी सुबह क्यूँ आती है ? मीरा ने कहा कि गुरुदेव ! अब तो आज्ञा लेकर आयी हूँ पति की। परन्तु चुपके–चुपके व सुबह–सवेरे ही आना पड़ेगा क्योंकि आप जाति से चर्मकार हैं और मैं क्षत्राणी हूँ। अतः सारी प्रजा राजा को मेरे खिलाफ भड़काती है कि निम्न जाति के व्यक्ति से कुल वधु ने दीक्षा ली। इससे लोग मुझे उलाहना देते हैं तथा मुझे तंग किया जाता है। प्रजा में विद्रोह न फैल जाये उच्च जाति व निम्न जाति को लेकर। मैं नहीं चाहती कि आपकी बस्ती में राजपरिवार आग लगा दे या मेरे कारण आपका डेरा यहाँ से उठवा दें। अतः मैं आपको अपनी नजरों से दूर नहीं करना चाहती। सन्त रविदास ने कहा कि बेटी ! तुझे राजा व प्रजा का डर है तो कल से मुझे शक्ल मत दिखाना। मैं केवल ईश्वर से डरता हूँ। राजा का व प्रजा का मुझे भय नहीं है। न ही मुझे इस झोपड़ी का लालच। तब से मीरा खुलेआम प्रजा के सामने गुरु के द्वार पर जाने लगीं।

अब उसके ह्रदय में जाति भेद भी निकल गया, राजा प्रजा का भय भी निकल गया। गुरुदेव ने बिल्कुल निर्भय बना दिया परन्तु अभी राजसी वेश बाकी था जो समर्पण में आड़े आ रहा था। मीरा को सब ताना देते थे कि तू राजरानी, हीरे–मोतियों में पली व तेरा गुरु जूतियाँ गाँठकर गुजर बसर करता है। क्या खाक प्यार करती है अपने गुरुदेव को ? कि गुरु तो पाई–पाई को मेहनत करे और तू महलों में ऐश्वर्य में रहे। मीरा को बहुत टीस पहुँचती थी। सोचने लगी कि ठीक ही तो कहते हैं सब। मैं महलों में हीरे जवाहारात में पलूँ और गुरुदेव सुबह से शाम तक मजदूरी करें। अतः अपने गुरुदेव की गरीबी हटाकर ही रहूँगी। अब मीराबाई ने हीरों का डिब्बा निकाला। उसमें से सबसे कीमती हीरा लेकर गुरुजी के पास जाकर विनय की, "हे गुरुजी ! मुझे आपकी गरीबी देखकर बहुत दुख होता है और आपकी गरीबी के कारण मुझे लोग दिन–रात ताने देते हैं। आप इस बेशकीमती हीरे को भेंट में स्वीकार करें तथा इसे बेचकर सुन्दर सा घर बनवा कर सुख का जीवन व्यतीत करें। जूते गाँठते हुए रविदास जी बोले, बेटी ! मुझे तो जो कुछ भी मिला है, इस कुण्ड के पानी और जूते गाँठने से मिला है। अगर तुझे लोक–लाज तंग करती है तो घर में बैठकर ही भजन–सिमरन कर लिया कर, मेरे पास आने की कोई जरूरत नहीं। मीराबाई हर हालत में वह हीरा उन्हें देना चाहती थी। बहुत देर तक मिन्नतें की, पर गुरुदेव ने एक न सुनी। अन्त में निराश होकर यह कहकर हीरा छोड़ आयी कि मैं इस हीरे को आपकी कुटिया की

छत में छिपाकर जा रही हूँ। अभी आपको इसकी जरूरत नहीं, परन्तु जब कभी जरूरत पड़े तो निकाल लें और सुख–सुविधा से जीवन यापन शुरू करें। कई महीने बाद मीरा फिर गुरुदर्शन को गयी तो उसी हाल में जूते गाँठते हुए देखकर बोली – ''गुरु जी ! मैं इतने प्यार व आदर से आपको हीरा दे गयी थी, आपने उसका फायदा नहीं उठाया, यह हीरा अब भी छत में ज्यों का त्यों पड़ा है। आप अभी भी इतने गरीब हैं ? गुरुदेव बोले–''बेटी ! अपना हीरा अपने साथ ले जा। मेरे पास प्रभु के नाम का अथाह धन है। अपने गुरु गरीब के पास कल से मत आना। मीरा समझ गयी कि अभी मेरे समर्पण में अमीरी व गरीबी का फर्क है। उसी दिन से मीरा ने राजसी ठाठ बाट से रहना छोड़ दिया। जब से जाति भेद अन्तःकरण से निकाला तो मीरा के ऊपर प्रजा व परिवार का कहर बरसना आरम्भ हो गया था और जब से अमीरी का लिबास छोड़ा तब से पहरे सख्त कर दिये गये कि ये तो बाँवरी हो गयी, सड़क पर निकलकर राजकुल को बदनाम करेगी।

जब मीरा को उसके गुरु से मिलने न दिया और रविदास जी की झोपड़ी तथा अन्य निम्न जाति की झोंपड़ी वहाँ से उठा दी गयी तो सन्त रविदास जी को बहुत कष्ट हुआ। उनका अन्तःकरण तड़फ उठा कि मेरी मीरा को मेरे कारण कितने कष्ट उठाने पड़ गये। अतः मैं अब इस बस्ती से बहुत दूर चला जाऊँगा ताकि लोग मेरी प्यारी शिष्या मीरा को तंग न करें। जब मीराबाई को पता चला कि गुरुदेव यहाँ से जाने की तैयारी में हैं तो वह पूर्णतया तड़फ उठी और विरह में मुख से ये दीन वचन निकलने लगे (जिन्हें लोग भजन के रूप में गाते हैं) –

'योगी मत जा, मत जा, मत जा, पाँव पड़ूँ तेरे।

इस प्रकार गुरुदेव ने मीरा के हर उस विचार को धो डाला जो उसकी भक्ति में बाधा थे। अतः कहने में ही सरल है निष्काम भक्ति। जिस–जिस विषय में मोह, आसक्ति व अहम् होता है, उसी समर्पण की माँग उस साधक से की जाती है। अहम् के समर्पण का उदाहरण – राजा पीपा के हृदय में ईश्वरीय लग्न तो प्रगाढ़ थी परन्तु अभी गरूर था राजा होने का तथा राजकुल के होने का। वह किसी सिद्ध पुरुष को गुरु बनाना चाहते थे। कबीर साहिब उस समय चोला छोड़ चुके थे। अतः कुछ लोगों ने सलाह दी कि सन्त रविदास जी इस समय पहुँचे हुये सन्त हैं, उन्हीं की शरण में जाओ। राजा सोचने लगा कि परमार्थ भी जरूरी है परन्तु सन्त रविदास तो चमार हैं। खुल्लमखुल्ला जाऊँगा तो प्रजा विद्रोह करेगी क्योंकि वह काल छुआछूत का काल था, उच्च वर्ग व निम्न वर्ग में बहुत फासला था। राजा पीपा ने सोचा कि कभी अकेले में जाऊँगा और नाम दीक्षा ले लूँगा। गंगा स्नान का मेला आया और सारी प्रजा गंगा घाट पर चली गयी। उधर रविदास जी का मुहल्ला भी सूना था। अतः चोरी–चोरी राजा सन्त रविदास के घर गये और अर्ज की कि मैं आपको अपना गुरु बनाना चाहता हूँ, महाराज ! मुझे दीक्षा दें। उस समय रविदास जी चमड़ा भिगोने के कुण्ड में से पानी निकाल रहे थे। उन्होंने सोचा कि राजा आया है चाहे जैसे भी आया

परन्तु आया तो, चलो दे दूँ इसे कुछ। रविदास जी ने उसे चुल्लू भर पानी उसी कुण्ड का दे दिया और कहा कि राजा ! पीले, यह चरणामृत है। राजा ने हाथ आगे करके अँजलि में पानी ले तो लिया परन्तु ख्याल आया कि यह चरणामृत कहाँ, ये तो चमड़े का पानी है। ये तो मुझे सचमुच चमार बना देंगे। राजा ने खुली आस्तीनों का कुर्ता पहना हुआ था। इधर–उधर देखा और पानी बाँहों के बीच गिरा दिया। रविदास जी ने देख लिया परन्तु कुछ कहा नहीं। घर आकर उसी वक्त धोबी को बुलाया कि ये कुर्ता तुरन्त धो डालो नहीं तो चमड़े का दाग नहीं जायेगा।

धोबी घर आया और अपनी लड़की से बोला कि जब तक मैं मसाला तैयार करूँ तब तक तुम कुर्ते की बाँहों को मुँह से चूसो और थूको ताकि दाग जल्दी निकल जाये। राजा का कुर्ता है, साफ न हुआ तो नाराज होंगे। लड़की ने आस्तीनें चूसी व थूकने के बजाय अन्दर सारा पानी निगल गयी। लड़की का योग मार्ग खुल गया व समाधिस्थ रहने लगी। ज्ञान–ध्यान की बात करने लगी। सारे राज्य में धोबी की लड़की महात्मा बन गयी, यह खबर फैल गयी। राजा ने सोचा कि चलकर देखूँ तो, रात को चुपके से धोबी के घर गया। लड़की राजा को देखकर, हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। राजा बोला, देख बेटी ! मैं मँगता बनकर तेरे चरणों में आया हूँ, भिखारी बनकर आया हूँ, राजा बनकर नहीं। मेरा प्रणाम स्वीकार करो। लड़की बोली, राजन ! मैंने तुम्हें राजा सोचकर प्रणाम नहीं किया बल्कि आज मैं महात्मा हूँ तो बस आपकी कृपा से। न आप कुर्ता भेजते, न मैं उस चरणामृत को चूसती, न महात्मा बनती। जो भेद व शक्ति थी, वह आपके कुर्ते में थी। राजा पीपा तड़फ उठा, चीत्कार करने लगा, आँखों से आँसू जारी हो गये, पश्चाताप की अग्नि में झुलस गया कि धिक् है मेरे राज्य को, मेरे राजापन को मेरे क्षत्रियपन को। हे छूत–छात ! तेरा बुरा हो, जिसने मुझे परमार्थ से खाली कर दिया। तुरन्त सारी प्रजा के सामने सन्त रविदास जी के पास गया और क्षमा–याचना की कि महाराज ! अब मुझ शरणागत को अपनाओ, मुझे क्षमा करो, पुनः कृपा करो, मुझे दीक्षा दो। रविदास जी ने कहा कि यह कुण्ड का पानी नहीं था, अमृत था, सचखण्ड से आया था। तू पहली बार आया था अतः मैंने सोचा कि मैं रोज पीता हूँ, आज राजा भी पी ले। राजा को समझ आ गयी। सारा अहंकार गल गया। ऊँच नीच की ग्लानि मिट गयी। गुरु की भक्ति हृदय में नृत्य कर गयी। दीक्षा ली और साधना में लग गया। राज्य भी करता था साधना भी करता था और अन्त में बहुत श्रेष्ठ कोटि का महात्मा बना। सन्त पीपा के नाम व शिक्षायें गुरु ग्रन्थ साहिब में आये हैं। ईश्वर जानता था कि मेरी तड़फ पीपा को है, परन्तु अहम् है, अतः गुरु दर पर भी गल्ती कर गये।

(क्रमशः)

"तारक ब्रह्म"- मेरे सद्गुरुदेव

लेखक : **वेदव्रत द्विवेदी** (उनापुर)

परमब्रह्म परमेश्वर प्रातः स्मरणीय, प्रतिक्षण वन्दनीय, अपने सद्गुरुदेव भगवान योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर कुछ हृदय पटल एवं मानस पटल पर बिखरे हुए शब्दों को चुनकर श्रद्धा सुमन के रूप में जो भाव प्रस्फुटित हो रहे हैं उन्ही करुणानिकेतन सद्गुरुदेव भगवान को अर्पित कर टूटी-फूटी भाषा के माध्यम से लिखने का दुस्साहस कर रहा हूँ, इसे श्री गुरुदेव भगवान का प्रसाद समझ कर ही स्वीकार करें।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।

(श्री मद्भगवद् गीता ९/२९)

अर्थात् : मैं सब भूतों में समभाव से व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है न प्रिय है ; परन्तु जो भक्त मुझे प्रेम से भजते हैं, वे मुझमें और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।

परम ब्रह्म परमेश्वर और सद्गुरुदेव की सत्ता योग दर्शन में ईश्वर को पूर्व ऋषियों का गुरु कहकर ही उसका लक्षण बताया गया है। सः **पूर्वषामपि गुरुकाले ना न बच्छेदात्'** काल से परे की सत्ता का नाम सद्गुरु है। तारक ब्रह्म सद्गुरुदेव भगवान ने योग का मार्ग ही क्यों चुना क्योंकि योग के बिना उस परम ब्रह्म से साक्षात्कार हो ही नहीं सकता। यह सिद्धयोग की साधना वास्तव में गुरुभक्ति की साधना है। योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है शास्त्र ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है और सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है अतः हे अर्जुन तू योगी बन !

पूज्य गुरुदेव जी अपने प्रवचनों में गीता एवं पातंजलि योगदर्शन के उदाहरण दिया करते थे क्योंकि गीता भगवान कृष्ण की दिव्यवाणी है और यह मोक्ष शास्त्र ग्रन्थ है, प्रभुजी अपने लाड़ले बच्चों को अपने दिव्य मुखारविन्द से गीता का पाठ कराया करते थे क्योंकि गीता एक हृदयस्पर्शी एवं अनुभूति परक ग्रन्थ एवं परा विद्या परममोक्ष प्रदायनी ग्रन्थ है। प्रभुजी की वाणी आह्लाद एवं मन को प्रसन्न कर शीतलता प्रदान करती थी। 'लल्ला', 'लल्ली' शब्दों में इतना प्यार टपकता था कि वह तीनों तापों का हरण करने वाला था। प्रभु जी के मुखारविन्द की आभा हमेशा कान्तिमान रहा करती थी। सादे धवल वेष में स्वयं नारायण ने अवतार लिया था। प्रभुजी की वाणी में ओजस्विता एवं पारदर्शिता स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती थी। प्रभु जी की आज्ञाओं का पालन यदि साधक पूरे मनोयोग एवं श्रद्धा से तथा तत्परता से एकनिष्ठ सद्गुरु भक्ति से करे तो निश्चय ही मेरे आराध्य देव श्री

चन्द्रमोहन जी महाराज की कृपाओं का भाजन हो जाया करता है, जिनके स्वरूप मात्र से सृष्टि की रचना एवं प्रलय संहार निश्चित है। ऐसे तारक ब्रह्म सद्गुरुदेव भगवान की शरण में रहकर प्रत्येक साधक अपने को निहाल समझता है।

शिव एवं गुरु स्साक्षात गुरुदेव शिवः स्वयं
उभयोस्तर किंचिन्न दृष्टव्यं मुमुक्षुभिः

अर्थात् : शिव ही साक्षात गुरु है और गुरु ही स्वयं शिव है। मोक्ष की कामना करने वाले को चाहिए कि दोनों में भेद कभी न देखे। ठीक यही शिखोपनिषद में भी लिखा है।

यथा गुरुस्तथैव ईश, यथेशः तथा गुरुः।
पूजनीयो महा भक्त्या न भेदो विद्यते नमो।।

अर्थात् : जो गुरु है वही ईश्वर है जो ईश्वर है वही गुरु है। अतः गुरु को ईश्वर ही समझकर उत्कृष्ट भक्ति के साथ उसका पूजन करना चाहिए। दोनों में कोई भेद नहीं है।

आश्रम के एक तपोनिष्ठ ब्रह्मचारी जी अपने लड़कपन अवस्था में ही घर छोड़कर प्रभुजी के शरण में आ गये उनके पैरों में छाजन का रोग हो गया। खुजलाने से शीघ्र ही सात आठ अंगुल की लम्बाई में फैल गया। छाजन जिनको हुआ है वे ही समझ सकते हैं इसकी पीडा को ब्रह्मचारी जी भारी तकलीफ में भी गुरुदेव की आज्ञा का पालन करते रहे और दर्द को सहते रहते। गुरुदेव के सम्मुख बैठकर डाकसेवा के अन्तर्गत पत्रों के जवाब श्री प्रभुजी उनसे लिखवाते। लेकिन ब्रह्मचारी जी ने कभी सद्गुरु देव जी से इस रोग के विषय में कुछ भी नही कहा। समस्त आश्रम वासियों को इस बारे में पता था। कई लोगों ने कहा प्रभुजी से तुम क्यों नहीं कहते ? लेकिन वे लोगों की बात अनसुना कर देते।

एक रोज किसी ने कह दिया कि लाल मिर्च इसमें भर लो तो यह जल्दी ठीक हो जायेगा। ब्रह्मचारी जी ने तमाम लाल मिर्च छाजन के घाव पर बुरक दिया। दर्द से बुरी तरह छटपटाते रहे। लाभ तो कुछ नहीं हुआ पैर में काफी सूजन हो गयी। लेकिन फिर भी गुरुदेव की सेवा में बराबर लगे रहे। एक दिन गुरुदेव की आज्ञा पाकर पत्रों का जवाब लिख रहे थे कि श्री प्रभु जी की दृष्टि अचानक उनके छाजन पर पड़ी। कहने लगे बड़े प्यार से – "लल्ला ! तुम्हारा यह छाजन अभी ठीक नहीं हुआ ? यह तो काफी बढ़ गया है। तुमने कभी हमें नहीं बताया इसमें तो बहुत दर्द होता होगा। ब्रह्मचारी जी ने बड़ी विनम्रता से कहा – "जी प्रभुजी ! दवा लगातार लेता रहता हूँ लेकिन ठीक नहीं होता है। श्री प्रभु जी ने बड़े गौर से छाजन के पूरे हिस्से को देखते हुए कहा– "अच्छा लल्ला ! कोई बात नहीं। दवा बराबर लेते रहना लापरवाही नहीं करना। प्रभुजी ने दृष्टिपात कर दिया। अब छाजन का बाप भी नहीं रहने वाला था। उसी दिन से छाजन बराबर सूखता चला गया। ब्रह्मचारी जी को पता भी नहीं चला। प्रत्येक ब्रह्मचारी एवं गृहस्थों के साथ ऐसी अनगिनत घटनाऐं जुड़ी

हुयी है। भक्त ने कुछ माँगा भी नही दाता ने सब कुछ दे दिया।

भगवान श्री कृष्ण ने जिस प्रकार से द्वापर में अवतार लिया था ठीक उसी प्रकार कलियुग में हमारे आपके प्राणी मात्र के भाग्यविधाता ने तारक ब्रह्म के रूप में अवतार लिया था।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

(श्रीमद् भगवद् गीता /१८/६६)

अर्थात् : सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्व शक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

श्री गुरुचरणाम्भोजं सत्यमेव विजानताम्।
जगत सत्यं सत्यं वा नेति रेति मतिर्मम।।

हे मुमुक्ष जनों ! श्री गुरु के चरण कमलों को ही सत्य जान लो इतना ही बहुत है। तदन्तर जगत सत्य है या असत्य है यह बात पण्डितों के लिए छोड़ दो।

जो लोग सद्गुरु को केवल साधन का अंग मानकर उन्हें मार्ग दर्शक के रूप में ही मानते हैं वे भूल करते हैं। सद्गुरु स्वयं तारक ब्रह्म हैं किन्तु मार्गदर्शक भी वे स्वयं बन जाते हैं। इस प्रकार से मार्ग दर्शक भी वही हैं तथा मंजिल भी वही हैं।

किन्तु यह बात केवल सिद्ध सद्गुरुओं के लिए ही लागू होती है। साधारण गुरुओं के लिए नही। सिद्ध सद्गुरु को भगवान सदाशिव ने तारक ब्रह्म की संज्ञा दी है। सद्गुरु को प्राप्त करने की विद्या का नाम ही योग है। जो पूर्ण परम ब्रह्म सद्गुरु देव भगवान से साक्षात्कार कराकर कैवल्य परम पद तक पहुँचा देती है। योग की पराकाष्ठा की साधक को अनुभूति होने लगती है यह परात्पर शक्ति शव और शिव तक परमब्रह्म सद्गुरु देव भगवान से जीव को मिलाने वाली यही श्रद्धा है।

अन्त में हम यही कह सकते हैं कि बिना ज्ञान के मुक्ति हो नहीं सकती ज्ञान के प्रदाता स्वयं सद्गुरु होते हैं।

गुरवो वहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः
दुर्लभोऽयं गुरुर्देवि शिष्य सन्तापहारकः। *(गुरु गीता)*

हे (पार्वती) शिष्य के धन को हजम करने वाले गुरु बहुत से हैं परन्तु शिष्य के दुःख को हरने वाले (ऐसा) गुरु दुर्लभ है।

***

ऐसे आ जाते हैं, भगवान सदाशिव

–मोहनलाल शर्मा (कांगड़ा)

कॉंगड़ा (हिमाचल प्रदेश) में, पूजनीय श्री विजय पुरी जी (जिन्हें सभी प्यार से सत्कार से स्वामी जी, भी कहते हैं) अरसा लगभग २० साल से, श्री भगवान सदाशिव जी महाराज, प्रभु श्री रामलाल जी महाराज, खास कर, योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जी, के दर्शाये–योग मार्ग का झन्डा, उठाये हुये हैं और लोगों को योग मार्ग की ओर अग्रसर कर रहे हैं। पहले वे भिन्न–भिन्न जगह पर योग शिविर लगाते थे। कोई पक्का ठिकाना नहीं था।

भगवत् कृपा से श्री विजय पुरी जी की अटूट आस्था व लगन, से पुराने डाक बंगला रोड कॉंगड़ा (हि० प्रदेश) में ७–८ वर्ष पहले, श्री सदाशिव मन्दिर, योग आश्रम की मात्र एक छोटे से कमरे में स्थापना हुई। जो कि अब एक स्थापित आश्रम की शक्ल में परिवर्तित हो चुका है। यहाँ पर, योग साधना द्वारा, प्रभु से मिलने की क्रियायें साक्षात रूप में देखी व अनुभव की जा सकती हैं। योग प्रक्रिया द्वारा असाध्य बीमारियों का यहाँ इलाज हो रहा है। जिससे कई भक्तजन लाभ उठा चुके हैं व कई लाभ उठा रहे हैं।

मुझ जैसे तुच्छ, व्यक्ति को ६ साल पहले श्री विजयपुरी जी की प्रेरणा से उपरोक्त मन्दिर (आश्रम) से जुड़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूर्व संस्कारों के कारण, शीघ्र ही, प्रभु की असीम कृपा होने लगी, व हो रही है वह आगे भी होती रहेगी, इस बात में कोई भी संशय नहीं है। यहाँ तीनों शक्तियाँ श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु, श्री महेश 'बशक्ल' श्री सदाशिव जी महाराज श्री प्रभु रामलाल जी महाराज, श्री योग योगेश्वर चन्द्रमोहन जी महाराज जी के प्रकाश व कृपा व अनुकम्पा की गंगा अविरल बह रही है।

अब असल बात पर आता हूँ। श्री सदाशिव महाराज जी, श्री प्रभु रामलाल जी महाराज व श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा कैसे अपने बच्चों का कष्ट मिटाया जाता है व वे आप भी स्थूल रूप में अपने बच्चों का कष्ट हरने, इस धरती पर विचरते हैं। श्री प्रभु कृपा का, मैं स्वयं भोगी उनका एक तुच्छ बच्चा हूँ।

घटना इस प्रकार से है :

मैं २४ अप्रैल सन् २००४ से सिविल अस्पताल कॉंगड़ा (हिमाचल प्रदेश) में बीमारी के कारण दाखिल था। बीमारी जानलेवा स्थिति तक पहुँच चुकी थी। ३० अप्रैल २००४ को रात

के ११–१२ बजे का वक्त था. पसलियों में असीम दर्द के कारण नींद कोसों दूर थी, अलबत्ता दर्द के मारे कराह रहा था। ऐसा पिछले ६–७ दिनों से हो रहा था। पूरी–पूरी रात सो नहीं पा रहा था।

अचानक मैं नींद के आगोश में चला गया। नींद का तो बहाना था, असल में प्रभु कृपा होनी थी। पता नहीं कौन से पूर्व जन्म का संस्कार था। नींद में ही मैंने देखा, महसूस किया कि, मेरे बिस्तर के पास लम्बी दाढ़ी लँगोट धारण किये हुये, हाथ में चिमटा लिये हुये एक लम्बे से, सफेद दाढ़ी वाले बाबाजी, जिनके दांये–बांये, प्रभु श्री रामलाल जी महाराज व श्री चन्द्रमोहन जी महाराज थे, जिन्हें मैं बखूबी पहचानता था, क्योंकि इन दोनों महाराज जी के स्वरूप मन्दिर (आश्रम) में भी लगे हैं व मेरे घर में भी इनके स्वरूप हैं, अलबत्ता लम्बे व लम्बी सफेद दाढ़ी वाले बाबा के बारे में मुझे ज्ञान न था, कि ये कौन हैं ? क्योंकि इनका स्वरूप मन्दिर में २४ अप्रैल से पहले नहीं लगा था। शायद २४ अप्रैल २००४ के बाद ही उनका स्वरूप मन्दिर (आश्रम) में लगाया गया था। हाँलाकि मन्दिर (आश्रम) का नाम उन्हीं के नाम पर, श्री सदाशिव मन्दिर योग आश्रम रखा गया था। उपरोक्त लिखे अनुसार सफेद लम्बी दाढ़ी वाले व लम्बे बाबा जी, जिनके सिर के पीछे प्रकाश चक्र घूम रहा था, ने मुझे कहा– बड़ी दर्द हो रही है ? मैं प्रभु श्री रामलाल जी महाराज व श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को देखकर अवाक् रह गया व मेरे मुँह से इतना ही निकला प्रभु देव आप, ये बाबा जी कौन हैं ? अरे बच्चा यही तो हैं, सृष्टि रचियता, श्री सदाशिव जी महाराज । श्री सदाशिव जी महाराज जी बोले, हमारी बात छोड़ो। इतना कहते ही, उन्होंने अपना चिमटा मेरे बिस्तर के साथ गड़ा दिया व कहा कि जिन पसलियों में दर्द हो रहा है, उस तरफ की पसलियों को चिमटे के साथ लगा दो। मैंने वैसा ही किया। मुझे महसूस हुआ कि 'बाबा जी' ने अपना हाथ मेरे पेट के अन्दर घुसाया व जब पेट से हाथ बाहर निकाला तो, उनके हाथ में एक काला सा गोला था। जैसे गरी का गोला होता है। उसे मेरे हाथ में देकर कहा, कि इसे धरती में दबा देना। उस गोले जैसी वस्तु को हाथ में लेकर, जब मैंने आँखें ऊपर उठाई तो देखा कि वे तीनों वहाँ नहीं थे।

मैं सुबह ६–७ बजे तक सोता रहा। जब मेरी नींद खुली तो, देखा कि मेरी धर्मपत्नी गहरी नींद में सो रही थी। जबकि वह भी पिछले ६–७ दिन से पूरी–पूरी रात सो न सकी थी। मैंने उसे उठाया। वह हड़बड़ाहट में उठी व कहने लगी, अरे सुबह हो गई ! पर एक बात है कि आप भी आज पूरी रात सोते रहे व आपने दर्द के बारे में भी कुछ नहीं कहा। मैंने कहा, भाग्यवान अब दर्द कैसे होगा ? मेरा इलाज तो हो गया है। कैसा इलाज, मेरी

पत्नि ने कहा ! मैंने रात की घटना, उसे सुना दी। धन्य हो, धन्य हो गुरुदेव आपकी कृपा अपरम्पार है। मैंने कहा मुझे अब कोई दर्द नहीं है। चलो आज मन्दिर जाकर आते हैं। प्रभु के दर पे शीश झुका आते हैं। जिन्होंने इतनी कृपा की है।

हम दोनों पति–पत्नि उसी समय घर को आ गये व घर पर स्नान इत्यादि कर, मन्दिर में पहुँचे। रोजाना की भांति गुरुजी (स्वामी जी) श्री विजय पुरी जी अपना भजन सुना रहे थे। भजन की समाप्ति पर प्रसाद लेने के बाद, उन्हें मैंने रात वाली घटना सुनाई व श्री सदाशिव जी महाराज जी के स्वरूप को देखते हुये कहा कि यही बाबा जी थे। तो स्वामी जी ने कहा कि यही तो हैं, सृष्टि रचियता। धन्य हो तुम, पूर्व संस्कारों के कारण तुम्हें तीनों विभूतियों के दर्शन चाहे नींद में ही हुये हैं, लेकिन हुये तो हैं। ऐसी प्राप्ति के लिये तो लोग वर्षों तपस्या व साधना करते हैं। सबसे बड़ी बात है कि स्वयं भगवान ने तुम्हारे रोग का इलाज करके रोग को शरीर से बाहर निकाल दिया है।

उसके बाद भी मैं २–३ माह रोगग्रस्त रहा, आप्रेशन तक शिमला में हुआ। पर उस दिन के बाद मुझे दर्द का आभास तक न हुआ ना आप्रेशन में कोई कष्ट हुआ। मैं सभी से कहता था कि, मुझे कायाकष्ट तो है, पर जान की जोखिम नहीं है। क्योंकि मेरे रोग को तो स्वयं श्री भगवान जी निकाल गये हैं। इस प्रकार मेरे जान लेवा रोग का निदान जो सदाशिव महाराज जी ने स्वयं किया। ये मेरी स्वयं भोगी सत्य घटना है।

***

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।।

(श्रीमद् भगवद् गीता १०/८)

मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति का कारण हूँ और मुझसे ही सब जगत चेष्टा करता है, इस प्रकार समझकर श्रद्धा और भक्ति से युक्त बुद्धिमान भक्तजन, मुझ परमेश्वर को ही निरन्तर भजते हैं।

श्री सत्यवीर परिवार पर श्री गुरु-कृपा

प्रेषक–**केशव देव उपाध्याय**, वाराणसी

अहैतुकी कृपा सागर, आराध्यदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की अद्भुत एवं अलौकिक यौगिक शक्तियों का श्रवण, मनन, चिन्तन एवं अनुभव प्राप्त होने के बाद दण्डी स्वामी सम्प्रदाय का एक साधक जिसका नाम श्री ब्रह्मानन्द तीर्थ जी है; ने श्री चरणों में सन् साठ के दशक में विधिवत् योग दीक्षा ग्रहण किया। अपनी अटूट श्रद्धा, लगन श्री गुरुआज्ञा पालन एवं साधना के बल पर उसने कठोरतम स्वाध्याय किया एवं फल स्वरूप श्री गुरुदेव की कृपा से योगी महापुरुषों की श्रेणी में आ गया। श्री गुरुदेव ने अपने इस लाड़ले शिष्य को अपना आश्रम अलग बनाकर योग प्रचार करने एवं दुखित तथा कष्ट भोग रहे संसारिक प्राणियों पर कृपा कर उनकी जीवन दशा सुधारने एवं उनका आध्यात्मिक उत्थान कर उनको योगमय जीवन जीने की कला सिखाने का आदेश दिया। इस लाड़ले शिष्य ने अपने योगेश्वर श्री गुरुदेव की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन आरम्भ कर दिया। इस शिष्य ने पवित्र नदी गंगा जी के किनारे सोरो धाम पर अपना आश्रम बनाया एवं उसी को केन्द्र बिन्दु मानकर अपना आध्यात्मिक कार्य आरम्भ कर दिया एवं आज भी यह कार्य कर रहे हैं। आदरणीय ब्रह्मानन्द तीर्थ जी महाराज योग दीक्षा देने वाले अपने शिष्यों को अपना स्वरूप, अपने गुरुदेव योगीराज एवं सर्व समर्थ श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का स्वरूप एवं अखिल ब्रह्माण्ड नायक परम योग योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु जी रामलाल जी महाराज का स्वरूप प्रदान किया करते हैं। वे दीक्षा का यह कार्यक्रम लगातार करते आ रहे हैं एवं इस समय भी कर रहे हैं। इनके द्वारा योग दीक्षित शिष्यों में भी वैसी ही क्रियायें हुआ करती हैं जिस प्रकार की कृपायें हम पर और आप पर होती हैं।

इन्हीं के द्वारा योग दीक्षित एक दम्पती हैं। पुरुष का नाम श्री सत्यवीर सिंह जी है एवं उत्तर प्रदेश पुलिस में ये दरोगा के पद पर कार्यरत हैं। इनकी धर्मपरायणा पत्नि का नाम श्रीमती निर्मला सिंह है तथा यह घरेलू कार्यों में दक्ष महिला है तथा मृदुभाषी है। ये दम्पति उत्तर प्रदेश के एटा जिला अन्तर्गत ग्राम धरपसी पो० मारहरा के मूल निवासी हैं। वर्तमान में इनकी पोस्टिंग पुलिस इन्सपेक्टर के पद पर सहारनपुर जिले में है। इनकी धर्मपत्नी इस जिले के पुलिस लाइन के सरकारी आवास में अपने बाल–गोपालों के साथ निवास करती हैं। इस दम्पत्ति की कुल पाँच सन्तानें हैं। इसमें तीन पुत्र तथा दो पुत्रियाँ हैं। इनकी एक

पुत्री का नाम पिंकी है, जिसकी अवस्था इस समय लगभग बीस वर्ष है। इसी वर्ष अर्थात् दो हजार चार की चैत्र शुदी नौमी, जो हम लोगों के दादा गुरुदेव अखिल ब्रह्मांड नायक परम योग योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज का प्राकट्य दिवस है, के करीब एक माह पूर्व इस परिवार पर एक विलक्षण अहैतुकी कृपा हुयी ; जो साधकों की श्रद्धा को अनायास ही बढ़ा देती है। उस कृपा चरित्र को समझना एवं समझाना ही इस कृपा चरित्र का मुख्य उद्देश्य है।

सन् मार्च २००४ (दो हजार चार) के प्रारम्भ में तीन–चार तारीख की रात से बच्ची को पेट की बीमारी (डिसेन्ट्री, पतला दस्त होने का रोग) प्रारम्भ हुआ। कुमारी पिन्की देवी की यह बीमारी आरम्भ होने के समय से क्रमशः बढ़ती ही गयी। दस्त के साथ–साथ उल्टी (ओमेटिंग) भी दूसरे दिन से आरम्भ हो गयी। एक–एक करके सहारनपुर शहर के करीब–करीब सभी ख्याति प्राप्त डाक्टरों एवं वैद्यों को दिखलाया गया परन्तु रोग की उग्रता घटने के बजाय बढ़ती ही गयी। सात मार्च दो हजार चार को तो ऐसी स्थिति आ गयी कि प्रातःकाल जो टिकिया पानी के साथ पीने को दिया गया, करीब दस मिनट बाद उल्टी (ओमेटिंग) में पानी के साथ दिये गये चार टेबलेट भी बाहर आ गये। सायंकाल तक बच्ची की हालत नाजुक हो गयी। प्राइवेट प्रैक्टीस करने वाले डाक्टरों में सबसे मशहूर डा० अनिल कुमार ने यह कहते हुये दवा बन्द कर दी कि बच्ची मात्र आठ–दस घन्टे की मेहमान है। लड़की के माता–पिता से डाक्टर की यह बातें गोपनीय रखी गयी। परन्तु बच्ची के सेवा में लगे हुए हितैषियों एवं पारिवारिक सदस्यों के व्यवहार एवं बातचीत से माता–पिता को इस बात का अहसास हो गया कि अब कुमारी पिन्की अपनी जिन्दगी का अन्तिम समय गुजार रही है। ऐसा बोध होने पर बहन श्री निर्मला देवी अपने पुजा घर में गयी एवं तीव्रतम तरीके से मंत्र जाप करने लगी। उन्होंने लगातार करीब तीन घन्टे तक अपने गुरुमंत्र का जप किया। उनके कथनानुसार तो उन्हें नींद लग गयी परन्तु ऐसा लगता है कि उनका ध्यान लग गया होगा।

उन्होंने परम योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं सिद्ध योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के दर्शन किये। बहन श्री निर्मला जी ने बतलाया कि आनन्दकन्द महाप्रभु जी रामलाल जी महाराज जमीन से करीब एक फुट की ऊँचाई पर खड़े थे एवं उनका आध्यात्मिक तेज इतना था कि उनके दर्शन करते समय आँखें चौंधियाँ जाती थी। श्री चन्द्र मोहन जी महाराज के मुख मण्डल पर प्रकाश की गोल आकृति थी जो चर्खी की तरह उनके मुख मण्डल का चक्कर अनवरत काट रही थी। बहन निर्मला देवी अपने स्थान से उठकर प्रणाम करना चाहती थी परन्तु वह उठ नहीं सकी। उन्होंने अपने स्थान पर

पड़े–पड़े योगेश्वर द्वय को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तदुपरान्त सिद्ध योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज उनके करीब आ गये एवं बोले ! लल्ली तुम्हारी बिटिया (पुत्री) ठीक हो जायेगी, चिन्ता छोड़कर पूजा एवं बच्ची की सेवा करो।

उनकी यह आशीर्वादात्मक अमोघ वाणी सुनकर बहन निर्मला जी काफी प्रसन्न हुयी एवं अपने पर्स से पाँच रुपये का नोट निकाल कर उनके हाथों में दी। उनके द्वारा दिया गया पाँच रूपया अपने कर–कमलों में पकड़ते हुये सिद्ध योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने मधुर मुस्कान के साथ बोले, लल्ली ! करीब पाँच दिन से तुम्हारे यहाँ कार्य कर रहा हूँ एवं उसकी मेहनत का सिर्फ पाँच रुपया हमें दे रही ... । बहन श्री निर्मला जी ने अपना पर्स खोला एवं एक पाँच रुपये का नोट श्री कर कमलों में समर्पित करते हुये कहा कि ये लीजिये प्रभुजी ! योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने उनके द्वारा प्रदत्त रुपया अपने कर कमलों में लेते हुये कहा कि बस लल्ली ! कुल मिलाकर दस रुपये ही। अपनी मधुर मुस्कान के साथ योगिराज यह प्रश्न कर रहे थे एवं बहन निर्मला की आँखों से अविरल अश्रुधारा निकल रही थी। उसके बाद वह करुणा निधान यह कहते हुये अन्तर्ध्यान हो गये कि यह बच्ची अवश्य–अवश्य आज ही पूर्ण रूपेण निरोग हो जायेगी। उनके जाते ही निर्मला जी की आँखें खुल गयी एवं उन्होंने महान आनन्द का अनुभव किया।

यह क्रम समाप्त होने के बाद निर्मला जी का पड़ोसी श्री बाबू राम, इस शहर के मशहूर डाक्टर अनिल कुमार को अपने साथ लेकर आया। उसने दरवाजा खुलवाया एवं ड्राइंग रूम में बैठाकर डा० को आदेशात्मक आवाज में कहा कि इस बच्ची की सूक्ष्मता से जाँच कर लो। आप को स्मरण होगा कि यही डाक्टर इसके पूर्व इस बच्ची का इलाज यह कहकर बन्द कर दिया था कि यह बच्ची मात्र आठ–दस घण्टे की मेहमान है। उसके कहने के बाद करीब पाँच घन्टे का समय व्यतीत हो गया था। अब उसके हिसाब से मात्र तीन घन्टे या पाँच घन्टे की ही बच्ची मेहमान थी। जब डाक्टर ने बाबू राम से यह बताने की कोशिश की कि इस बच्ची की चेकिंग हम कर चुके हैं और अब यह बचेगी नहीं तो श्री बाबू राम ने उससे कहा कि आप इसकी नये सिरे से चेकिंग करें, और यह जान लें कि इस बच्ची का यह रोग अभी ठीक होना है। बीमार आदमी के परिवार के सदस्य या उसके हितैषी द्वारा इलाज करने वाले डाक्टर को ऐसा आदेश देने की घटना अपने आप में निराली है। ऐसा लग रहा था जैसे शहर का यह मशहूर डाक्टर अनिल कुमार श्री बाबू राम का अधीनस्थ कर्मचारी है। डाक्टर अनिल कुमार ने कुमारी पिन्की का गहनतम एवं पूर्ण मनोयोग से जाँच किया परन्तु उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

डाक्टर अनिल कुमार को निराश होते देख श्री बाबूराम ने डाक्टर से कहा कि, डाक्टर

साहब ; शायद आप समझ नहीं पा रहे है। बच्ची के पेट की गैस नीचे जाने के बजाय उर्ध्वगामी हो गयी है। बच्ची की बिमारी का मुख्य कारण गैस ही है। अतः आप इसे गैस के तीन चार इन्जेक्शन जल्दी-जल्दी लगा दें, इसे आराम मिल जायेगा। सहारनपुर शहर के नामी डाक्टर अनिल कुमार जी ने बिना अपनी बुद्धि लगाये श्री बाबू राम की आज्ञा का अक्षरशः पालन करते हुये दोनों बाह में दो इन्जेक्शन तथा दोनों कुल्हों पर दो इन्जेक्शन लगा दिये एवं उसके बाद दवा की दो गोली और एक कैप्सूल पानी से खाने को दिया। कुमारी पिन्की ने तीनों दवायें पानी से ग्रहण कर लिया। उसके बाद श्री बाबू राम डाक्टर साहब को उनके नर्सिंगहोम छोड़ने चले गये। डाक्टर की फीस, सुई-दवाई आदि के पैसे के बाबत उन्होंने कुमारी पिन्की के परिवार वालों से कुछ भी नहीं कहा। उन लोगों के चले जाने के करीब आधा घन्टा बाद पिन्की को नींद लग गयी एवं सात घन्टे तक वह गहरी नींद में सोती रही। परिवार के सभी लोग जो एक दिन पूर्व उसकी (पिन्की की) मृत्यु का इन्तजार कर रहे थे इस समय, जिस कमरे में वह बीमार पड़ी थी उसी कमरे मे बैठकर उसके जागने का बेसब्री से इन्तजार कर रहे थे। आज की तारीख सात मार्च थी एवं आज ही रंग खेलने वाली होली थी। कुमारी पिन्की जब नींद से जगी तो वह बिल्कुल प्रसन्न मुद्रा में थी एवं बाह्य आदमी देखकर यह अन्दाजा नहीं लगा सकता था कि यही बच्ची चन्द घन्टे पूर्व, ऐसी खतरनाक स्थिति से गुजरी है। अब कुमारी पिन्की पूर्ण रूपेण रोग मुक्त थी एवं प्रसन्न मुद्रा में अपने पारिवारिक सदस्यों से वार्तालाप कर रही थी।

होली के दूसरे दिन बहन निर्मला जी पिन्की एवं अपने अन्य पारिवारिक सदस्यों के साथ, अपने पड़ोसी श्री बाबू राम के घर इस नियत से गयी की होली मिलन भी हो जायेगा एवं आदरणीय भाई श्री बाबूराम से कृतज्ञता भी प्रकट कर लूंगी। वहाँ पहुँचने पर उचित अभिवादन के बाद सभी लोगों ने नाश्ता वगैरह किया एवं चाय पी। तदुपरान्त बहन निर्मला जी ने नम्रता से कृतज्ञता भरे शब्दों मे कहा कि भाई साहब ! आप ने बच्ची पिन्की की जान बचा ली, वरना आज यह परलोक सिधार गयी होगी। उपरोक्त घटनाओं से अनभिज्ञ आदरणीय श्री बाबू राम ने प्रश्न किया कि वो कैसे ? बहन निर्मला जी ने बतलाया कि यदि डाक्टर अनिल कुमार को लेकर आप हमारे घर नहीं आये होते तो बच्ची मर गयी होती, क्योंकि आप ने ही रोग का कारण उदर गैस बताकर चार इन्जेक्शन लगवाये थे। यह इन्जेक्शन डाक्टर साहब ने आप के ही आदेश एवं सलाह पर लगाये थे। श्री बाबूराम बिल्कुल एकाग्रचित होकर बहन निर्मला की बातो को सुन रहे थे परन्तु उनकी समझ में कोई बात आ नहीं रही थी। निर्मला जी की बातें समाप्त होने पर उन्होंने कहा कि बहन जी आप जो कुछ भी कह रही है, मैं समझ नहीं पा रहा हूं। मैं दो दिन से बाहर था और आज

ही अपने क्वार्टर पर आया हूँ। श्रीमती निर्मला देवी को परिस्थिति एव घटनाक्रम समझते देर नहीं लगी एवं इसे पढ़ने वाले पाठकगण भी अब पूर्ण रूपेण समझ गये होंगे कि श्री बाबूराम का रूप धारण कर एवं डा० अनिल कुमार को निमित्त बनाकर इस परिवार पर कृपा करने वाला और कोई नहीं वरन काल चक्र, युगचक्र एवं जगचक्र को एक साथ चलाने वाले, देवाधिदेव महादेव जगतपति जनार्दन ; हमारे आपके आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ही थे। काल के गाल से खींचकर, इस अनोखी प्रकार से जीवन दान देना उन करुणासागर श्री गुरुदेव के ही बस की बात है। आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज तथा त्रिजग पावन दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की ऐसी कृपाओं को स्मरण कर अन्तर्मन स्वयं ही गुनगुनाने लगता है :-

घर है हमारा सूना, आके ज्योति तुम जलाना।
व संग में अपने गुरुवर प्रभु राम को भी लाना।।
आकर हमारे घर में, गुरुदेव फिर न जाना।
तुम रूठना ना हमसे, चाहे रूठे सब जमाना।।
आता है सिर्फ, तुमको रोते को भी हँसाना।
गुरुदेव संग तुम अपने प्रभु राम को भी लाना।।

❋ ❋ ❋

मृत्योर्विभेषि किं मूढ भीतं मुंचति किं यमः।
अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि।।

अरे मूर्ख (मनुष्य) क्या तुम मृत्यु से डर रहे हो ? डरे हुऐ को क्या मृत्यु छोड़ देती है ? ऐसा समझ रहे हो तो यह तुम्हारी मूर्खता है। मृत्यु तो सबको काल का ग्रास बना देती है। वह तो जो जन्म ही नहीं लेता, उसी को नहीं पकड़ती है। इसलिए ऐसा प्रयत्न करो, जिससे पुनः जन्म ही न लेना पड़े।

''श्री गुरु पूर्णिमा : मेरे श्री गुरुदेव''

कुँवर ए० के० सिंह एडवोकेट, कछवा, मीरजापुर

हमारे देश में आषाढ़ सुदी पूर्णिमा गुरुपूर्णिमा शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार ही जगत में उन पूजनीय विभूतियों को गुरु या सद्गुरु के नाम से सम्बोधित किया जाता है। जिनके सद्वचन, आचरण एवं उनके कार्य–व्यवहार से मनुष्य अज्ञान–अन्धकार की परिधि से बाहर ज्ञान के उस ज्योति रूपी प्रांगण में आ पहुँचता है जहाँ से उसे अपने जीवन–लक्ष्य की उपलब्धि का मार्ग स्पष्टरूपेण न केवल दिखाई देने लगता है वरन् उसे पा लेने में भी समर्थ हो जाता है। योग–दर्शन के प्रणेता भगवान पतंजलि देव ने समाधि–पाठ के २६वें सूत्र में बतलाते हैं–

''पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।।''

अर्थात् वह गुरु ऐसा नहीं है जो किसी काल में हो और किसी काल में न हो। वह सदैव है और सदैव रहेगा। अतः इस आदि गुरु सत्ता को हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।

यह गुरुसत्ता सर्वव्यापी होने के साथ ही हम सबके हृदय में मौजूद है। अतः ऐसे गुरुसत्ता का क्षण–क्षण हमें मनन, चिन्तन, ध्यान, तप, जप करते रहना चाहिए क्योंकि वही हमारा सच्चा पथ प्रदर्शक है। उन्होंने अनेकानेक हिन्दू धर्म ग्रन्थ, महाभारत, गीता, श्रीमद्भागवत, पुराण आदि ग्रन्थों की रचना करके मानव–जीवन को सुसंस्कृत बनाने की जो प्रेरणा दी, वह सराहनीय एवं अद्भुत है। इसीलिए भगवान व्यासदेव जी को 'व्यास पूर्णिमा' के नाम से विख्यात कर दिया।

श्री गुरु पूर्णिमा का पावन पर्व ऐसे ही सब विश्व विश्रुत ऋषियों, मनीषियों एवं सद्गुरुओं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन का पर्व है। जो सुसंस्कृत समाज में आदर एवं श्रद्धा से मनाया जाता है। यद्यपि "गुरु की महत्ता" 'सद्गुरु की महिमा' नामक पिछले लेख में मैंने गुरु की महत्ता एवं अनिवार्य आवश्यकता को स्पष्ट किया था जिसे वेद, उपनिषद्, दर्शन आदि–आदि धर्म ग्रन्थों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन का निर्माण बिना सद्गुरु कृपा के हो ही नहीं सकता। योग मार्ग में इनके अनुभागियों को सच्चे सद्गुरु की शरणागति अत्यन्त ही आवश्यक है। क्योंकि सद्गुरु का मार्गदर्शन ही उन्हें लक्ष्य तक पहुँचा देने में समर्थ होता है। सद्गुरु शरणागति ही साधक को स्वस्थ और सबल बनाकर आध्यात्मिक उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँचा देती है। इसीलिए ही तो गुरु की, गुरु पूजन की और सद्गुरु की शरण में जाने की महत्ता है। इसीलिए 'गुरु पूर्णिमा' का पावन पर्व सद्गुरु पूजन की परम्परा का पावन पर्व है। इस पावन पर्व पर श्री आनन्दकन्द परम प्रभु सद्गुरु देव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के चरणों में कोटिशः साष्टांग

दंडवत प्रणाम।

मेरे श्री गुरुदेव –

गुरुर्देवो गुरु धर्मः गुरु निष्ठा परंतपः।
गुरोः परतरं नास्ति सत्यं सत्यं वरानने।।

विश्व का प्राचीनतम् एवं विशालतम धार्मिक एवं आध्यात्मिक मेला तीर्थराज प्रयाग के तट पर सन् १९९९ कुम्भ मेला के नाम से विदित, माह फरवरी अपने चरमोत्कर्ष पर था। बसन्त पंचमी का पर्व बीते एक दिन व्यतीत हुआ था। पल–पल स्मरणीय परम आदरणीय मेरे श्री गुरुदेव भगवान प्रातः काल संगम स्नान के पश्चात् प्रातःकालीन अखण्ड ज्योति महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज जी की दैनिक आरती के उपरान्त गीता पाठ एवं प्रातः कालीन प्रवचन में ही एक गुरोराज्ञा जारी किए कि आज नास्ता करके, तत्पश्चात् दोपहर का भोजन थोड़ा जल्दी करके सभी बच्चे आराम करके दोपहर में लगभग २ बजे इस कुम्भ मेला में पधारें सभी विश्व योगी श्री देवराहा बाबा से मिलने चलेंगे। सभी हमारे बच्चे आश्रम में आये हुए, ब्रह्मचारीगण के साथ एक होकर उनके शिविर चलेंगे, तत्पश्चात् तुम सब के पीछे हम भी कार द्वारा आयेंगे। क्योंकि हमारे सब बच्चों को ले जाने के लिए गाड़ी उपलब्ध नहीं है सो तुम सब पैदल ही पहुँच जाना।

श्री सद्गुरु देव भगवान का यह अकिंचन बालक भी उस समय शिविर में उपस्थित था। सुबह का जलपान श्री गुरुदेव जी द्वारा वितरित किया जा रहा था, यह अकिंचन बालक जब प्रसाद (जलपान) लेने श्री चरणों में पहुँचा तो श्री चरणों ने जलपान देने के साथ ही प्यार–दुलार में आज्ञा दी लल्ला तुम भी मेरे साथ श्री देवराहा बाबा के पास चलना। श्री गुरुदेव भगवान की आज्ञा शिरोधार्य करके बालक तैयार हो गया।

आनन्दकन्द श्री गुरुदेव जी की आज्ञानुसार ब्रह्मचारीगण एवं अपने शिविर के गुरुभाई बहन एक साथ होकर श्री देवराहा बाबा के शिविर की ओर प्रस्थान किये। तत्पश्चात् श्री गुरुदेव भगवान कार द्वारा श्री देवराहा बाबा के शिविर की तरफ प्रस्थान किये। श्री सिद्धगुफा योग शिविर के ब्रह्मचारीगण एवं शिष्य समुदाय वहाँ पहले से ही पहुँच चुका था। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान के साथ कार द्वारा हम भी श्री देवराहा बाबा के शिविर पहुँचे। जब कार रुकी, तभी ब्रह्मचारी जी ने आकर कार में सूचना दी कि अभी देवराहा बाबा स्नान करने एक घण्टे से गये हैं, लगभग ४ बजे दर्शन देंगे एवं आज यहाँ रामायण सीरियल के प्रोड्यूसर श्री रामानन्द सागर सपरिवार दर्शन करने आये हैं। उन्हीं की दर्शन व्यवस्था हेतु तमाम पुलिस–प्रशासनिक अधिकारियों की चुस्त व्यवस्था है। ब्रह्मचारी जी के यह कहने के उपरान्त मेरे मन में बड़ी ही उलझन हुई कि श्री गुरुदेव भगवान यहाँ कहाँ भीड़–भाड़ में आ गये, अभी लगभग ३ बज रहे हैं। एक घण्टा रुकना तथा उसके पश्चात् इन वी. आई. पी. लोगों का दर्शन करना, तब पता नहीं कितना समय लगे, और मेरे श्री गुरुदेव भगवान

का यहाँ कहाँ रुकना, बैठना सब बातें सोचकर मन में उलझन हुई। किन्तु यह स्पष्ट करना चाहूँगा कि श्री गुरुदेव भगवान की कार का रुकना, ब्रह्मचारी का तथ्य से अवगत कराना मेरे मन की उलझन। ये सब लिखने बताने में समय लग रहा है किन्तु मौके पर बस ब्रह्मचारी जी का बताना, श्री गुरुदेव भगवान का बस मुश्किल से एक मिनट के अन्दर ही कार का फाटक खोलने का आदेश देना।

आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान के कार से चरण कमल बाहर, निकलते ही हम सब गुरुभाईगणों द्वारा जयघोष करना, श्री सद्गुरु देव भगवान की जय, परम प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जय घोषों से क्षेत्र गुंजायमान हो उठा।

उस क्षेत्र की यथास्थिति से अवगत होइये कि श्री देवराहा बाबा के मचान से १०० फीट की दूरी पर मेन रोड पर श्री गुरुदेव भगवान की कार का रुकना एवं जयघोष। उधर श्री देवराहा बाबा के शिविर मचान के पास लगभग २५०–३०० व्यक्तियों की भीड़ और इस समय ४ बजे के लगभग श्री बाबा का दर्शन होगा और प्रथमतः वी. आई. पी. रामानन्द सागर जी दर्शन करेंगे। जैसा कि पुलिस–प्रशासनिक व्यवस्था थी।

आदरणीय श्री गुरुदेव जी के निकलते ही जयघोष का होना। तत्क्षण श्री देवराहा बाबा के शिविर से जयघोष सुनाई दिया, देखा कि मचान के ऊपर योगीराज श्री देवराहा बाबा का स्थूल दर्शन। जो अभी डेढ़ घण्टे बाद का समय निर्धारित था। इतने में इधर जयघोष उधर जयघोष इन दोनों तरफ के जयघोषों से अलग एक महाघोष हुआ "हटो, हटो रास्ता छोड़ो हटो, मेरे आराध्य आ रहे हैं।" यह घोष था योगीराज श्री देवराहा बाबा का। उस समय देखते ही बनता था कि एक योगीराज किस तरह बेचैन, व्यस्त एवं प्रसन्न मुद्रा। इधर अपने श्री गुरुदेव भगवान शान्त धीर मुद्रा में छड़ी लिए इस अकिंचन बालक के कंधे पर अपना वरद हस्त रखे हुए धीरे–धीरे आगे बढ़ रहे हैं एक महा ध्वनि के साथ–

गुरुदेव जय जय, सद्गुरुदेव जय जय।
अखण्ड ज्योति प्रभु श्री रामलाल जय जय।।

श्री गुरुदेव जी का योगी शिविर में प्रवेश; योगीराज देवराहा बाबा की स्थिति देखते बनती थी, जैसे कोई साक्षात् परमब्रह्म किसी के दरवाजे पर एकाएक उपस्थित हो जाये। योगी देवराहा बाबा अपने मचान की बनी सीढ़ी से मृगचर्म लपेटते हुए कभी सीढ़ी से नीचे उतरते, नीचे आते–आते ऊपर चले जाते। ऊपर मचान पर श्री गुरुदेव की ओर देखते, मन ही मन अभिवादन करते, तुरन्त पुनः नीचे उतर आते। यह दृश्य देखते ही बनता था। अन्ततः श्री गुरुदेव भगवान मचान के बिल्कुल निकट पहुँचे, उस समय योगी देवराहा बाबा स्वागतार्थ बिल्कुल मचान से नीचे खड़े थे। श्री सद्गुरु भगवान को मचान के ऊपर ले चलने हेतु। किन्तु श्री गुरुदेव जी ने स्पष्ट कहा कि "आप ऊपर जाओ, मैं नीचे तुम्हारे सामने हूँ।

योगीराज देवराहा बाबा ने कहा– नहीं महाराज जी यह उचित नहीं है। यह शोभा नहीं देता। श्री गुरुदेव भगवान ने कहा, "नहीं मैं बिल्कुल ठीक हूँ। यह तुम्हारा समाज है तुम्हारा नीचे आना उचित नहीं। तुम कोई चिन्ता मत करो, मैं बिल्कुल ठीक हूँ।" तत्पश्चात् योगीराज श्री देवराहा बाबा द्वारा श्री गुरुदेव भगवान को वस्त्र द्वारा श्रृंगारित करना। एक कटि में लपेटना एक कंधे पर पहनाना तथा एक चादर को आराध्यदेव श्री गुरुदेव भगवान के मस्तक पर लपेटते हुए यह उद्घोषित करना कि "महाराज जी इन तीनों लोक में जितने योगी हैं सभी का ताज (मुकुट) आप ही धारण किए हो।" ये अमर सन्देश योगीराज श्री देवराहा बाबा के थे। पुनः आगे योगी बाबा ने तमाम मिठाई फल सूखे मेवे आदि–आदि श्री गुरुदेव जी को भेंट किए। मैंने देखा कि जैसे हम सब जब कोई हम सब का पूज्य बड़ा, आदरणीय या ईश्वर अथवा श्री गुरुदेव पूजन में मन की लालसा होती है कि उत्तमोत्तम ढंग से भगवान का पूजन करूँ उत्तम से उत्तम नैवेद्य चढ़ाऊँ, उत्तम माल्यार्पण करूँ, ठीक वही मैंने देखा परम योगी श्री देवराहा बाबा द्वारा अपने श्री गुरुदेव जी के स्वागत में ! योगीराज श्री देवराहा बाबा बार–बार अपनी झोपड़ी में घुसते कोई चीज मेवा, फल, मिठाई इत्यादि–इत्यादि श्री गुरुदेव जी को अर्पण करते।

पुनः आगे इन दोनों महायोगियों द्वारा एकाएक आँखें बन्द कर शान्त होकर अन्तरतम् वार्तालाप करना लगभग यह वार्ता १० मिनट चली, पुनः दोनों का एक साथ आँखें खोलना एवं संस्कृत में खेचरी मुद्रा पर १० मिनट तक वार्तालाप। पुनः योगीराज देवराहा बाबा द्वारा यह कहना कि "महाराज जी मुरादाबाद वाली घटना अलौकिक थी"। महाराज जी आप कैसे मानव समुदाय के बीच रहते हो यह बड़े सौभाग्य की बात है"। श्री महाराज जी श्री चन्द्रमोहन जी महाराज मेरे आत्मा में बसने वाले आप इस बालुका पर खड़े इतनी देर हो गई हमें बड़ा कष्ट हो रहा है, श्री महाराज जी या तो आप ऊपर आवें या अपने शिविर को प्रस्थान करने की कृपा करें। किन्तु प्रस्थान के पूर्व हमें महाप्रभु जी का वह महामंत्र सुनवाते जायें–

गुरुदेव जय जय, सद्गुरु देव जय जय।
अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय जय।।

अन्ततः परम गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के प्रस्थान करते–करते योगीराज श्री देवराहा बाबा ने उस स्थान पर एक और अमर सन्देश दिया–

"श्री महाराज जी इस सारे धरातल पर जितने योगी हैं सब को प्रकाश आप से ही मिलता है"।

इस पावन पर्व गुरुपूर्णिमा पर धन्य है मेरे श्री गुरुदेव ! उनके पावन चरण कमलों में बार–बार नमन।

***

पूर्ण योग

स्वामी श्री मित्रसेन जी

योग का अर्थ संयोग, मिलन या मेल है। दो का अथवा बहुतों का एक में मिल जाना योग है। यह योगसिद्धि वियोग में होती है। परन्तु वियोग से योग में आना तो फिर वियोग में जाने के लिये ही है। ऐसा वियोग और योग अर्थात् योग–वियोग ही संसारी जीवन है, जिसमें देश–काल का अधिकार बना रहता है। ईश्वरी जीवन में पूर्ण योग भी है और पूर्ण वियोग भी। इस जीवन में आना–जाना अथवा कोई परिवर्तन नहीं है, सभी रूप और सभी अवस्था में यह योग है। यह निश्चित ही है कि ईश्वरीय सत्ता से रहित कोई भी सत्ता नहीं है। परन्तु जिसमें यह धारणा और ज्ञान है कि सब विस्तार एक ईश्वर में ही योग पा रहा है, वह तो अपने जीवन के समस्त विस्तार से अपने प्रभु में समाया ही है। उसका संसारी जीवन भी ईश्वरीय जीवन ही है। इस अवस्था को प्रकट करने के लिये नदी–सागर का दृष्टान्त प्रसिद्ध है। नदी अपने समुद्र में पूर्ण योग प्राप्तकर अपने रूप और नाम को समुद्र में मिला रही है। समुद्र में योग पाकर उसका रूप और नाम समुद्री सत्ता में समा जाता है। और जो नदी अपने समुद्र में योग नहीं पाती, वह अपने रूप और नाम के अभाव में आ जाती है। मानो अणुका अपने विभु में योग पाना ही उसकी सत्ता का सत्यता में बना रहना है।

अब नदी के इस पूर्ण योग पर विचार कीजिये। वह जिस पर्वत से निकली है, जो उसका जन्मस्थान है, वहीं से वह अपने समुद्र में योग पा रही है। यह स्थिति मध्य की है– उसकी अविच्छिन्न धारा उद्‌गमस्थान से लेकर समुद्रपर्यन्त समुद्र से सदा युक्त ही है। आदि, मध्य, अन्त किसी भी अवस्था में वह योगशून्य नहीं है। यही उसका पूर्ण योग है। इसी प्रकार साधक भी अपने पूर्णरूप में और सभी अवस्थाओं में अपने प्रभु में पूर्ण योग पा रहा है। इसमें स्थूल या सूक्ष्म का भेद ही क्या है ? जैसे संसारी दृष्टि अपने सम्मुख जो कुछ है–सब देख रही है, वैसे ही इसमें ईश्वरी सत्ता का देखना है। इसमें अपना देखना सबमें समाया ही है। और ऐसी दृष्टि द्वारा पूर्ण योग ही है। ऐसी स्थूल दृष्टि में सूक्ष्म दृष्टि भी समायी ही है। पूर्ण आनन्द, पूर्ण उल्लास, पूर्ण उमंग सब पूर्ण–ही–पूर्ण है। पूर्ण योग का अभिप्राय यह है मानो सभी रूपों, सभी नामों और सभी अवस्थाओं में अपने प्रभुजी अपना योग–ही–योग दे रहे हैं। किसी भी रूप, नाम या अवस्था में तनिक–सी भी कुछ ग्लानि या शंका मन में आ जाये तो समझना चाहिये कि यही योग से हीनता है। परन्तु यह ग्लानि, शंका या नहीं का बर्ताव भी अपने प्रभुजी का ही पूर्ण दान है। यह भी पूर्ण योग की पूर्ति और दृढ़तारूप ही है। हिरण्यकशिपुजी श्री प्रहलादजी की भक्ति में अवरोध करने वाले होकर भी अवरोधक नहीं थे, वरं उनकी गहरी दृढ़ता का कारण भी प्रभुजी की प्रेरणा ही है। यह भी संसारी वियोग की अवस्था से पूर्णयोग की सिद्धि में पहुँचने का एक पूर्ण साधन ही है। अपनी प्यारी वस्तु को छीनने वाला ही उस वस्तु में प्रीति बढ़ाने वाला है।

कृष्णसमीपी पांडवा गले हिमाचल जाय।
कृष्णविरहिनी गोपियाँ मुक्तिधाम लिया पाय।।

पाण्डवों का योग बाहरी योग था, और गोपियों का योग बाहरी से भीतरी योग में समाकर पूर्ण योग सिद्ध हो गया था। इसी प्रकार सभी योग पूर्ण योग में समाये हैं।

* * *

सिद्धयोग

'सिद्धयोग' या 'सिद्धमार्ग' क्या है ? जिस पथ से बिना कष्ट के योग प्राप्त होता है, उसी पथ को सिद्धमार्ग कहते हैं। योग रूप सिद्धि प्राप्त करने का पथ सुषुम्ना नाड़ी है ; जब इस नाड़ी से प्राणवायु प्रवाहित होकर ब्रह्मरन्ध्र में जाकर स्थित होता है जब साधक को जीव ब्रह्मैक्य ज्ञानरूप योग प्राप्त होता है। सर्वप्रथम गुरुदेव द्वारा शक्ति का संचार होने पर कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है और उसके पश्चात् क्रमोन्नति के द्वारा योग लाभ होता है। इसमें योगों की आधार स्वरूपा मूलाधार स्थिता कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने के लिए योगशास्त्रोक्त आसन, मुद्रा और प्राणायाम आदि कुछ भी अनुष्ठान करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, केवल गुरु शक्ति के प्रभाव से ही कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत हो जाने से स्वाभाविक रूप में योगमार्ग प्राप्त हो जाता है। इसी को सहजकर्म कहा गया है। स्वभाव से जो होता है, वही वास्तव में सहज है। सद्गुरु की कृपा से शक्तिसंचार के द्वारा सिद्धिमार्ग प्राप्त होने पर एकमात्र गुरुपदिष्ट मन्त्रजाप या ध्यान के द्वारा ही स्वभावतः आसन, मुद्रा, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान आदि सब योगांग अनायास साधित हो जाते हैं, इसके लिए विशेष परिश्रम करने या चेष्टा करने की आवश्यकता नहीं होती अथवा गुरु से इन सब आसन, मुद्रा और प्राणायाम आदि का स्वतन्त्र रूप से उपदेश लेने की भी जरूरत नहीं होती।

इसी पथ से क्रमशः अग्रसर होते-होते साधक शीघ्र ही योगसिद्धि प्राप्त करके कृतार्थ और धन्य हो जाता है। इस उपाय से स्वभावतः योगांगादि साधनक्रम से जीव और ब्रह्म का ऐक्यज्ञान अथवा अखण्ड चैतन्यानुभूति होती है और इसी को सिद्धिमार्ग कहते हैं।

* * *

PRINTPOINT 0562-2262261

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER — BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

□□□□□□

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।
विषया विनिवर्तन्ते निहारस्य देहिनः। रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।

कछुवा सब ओर से अपने अंगों को जैसे समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों के विषयों को सब प्रकार से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है (ऐसा समझना चाहिये)। इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत हो जाते हैं, परन्तु उनमें रहने वाली आसक्ति निवृत नहीं होती। इस स्थितप्रज्ञ पुरुष की तो आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत हो जाती है। (श्रीमद् भगवद्गीता २/५८-५९)

प्रकाशक एवं मुद्रक :- विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक—आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा